

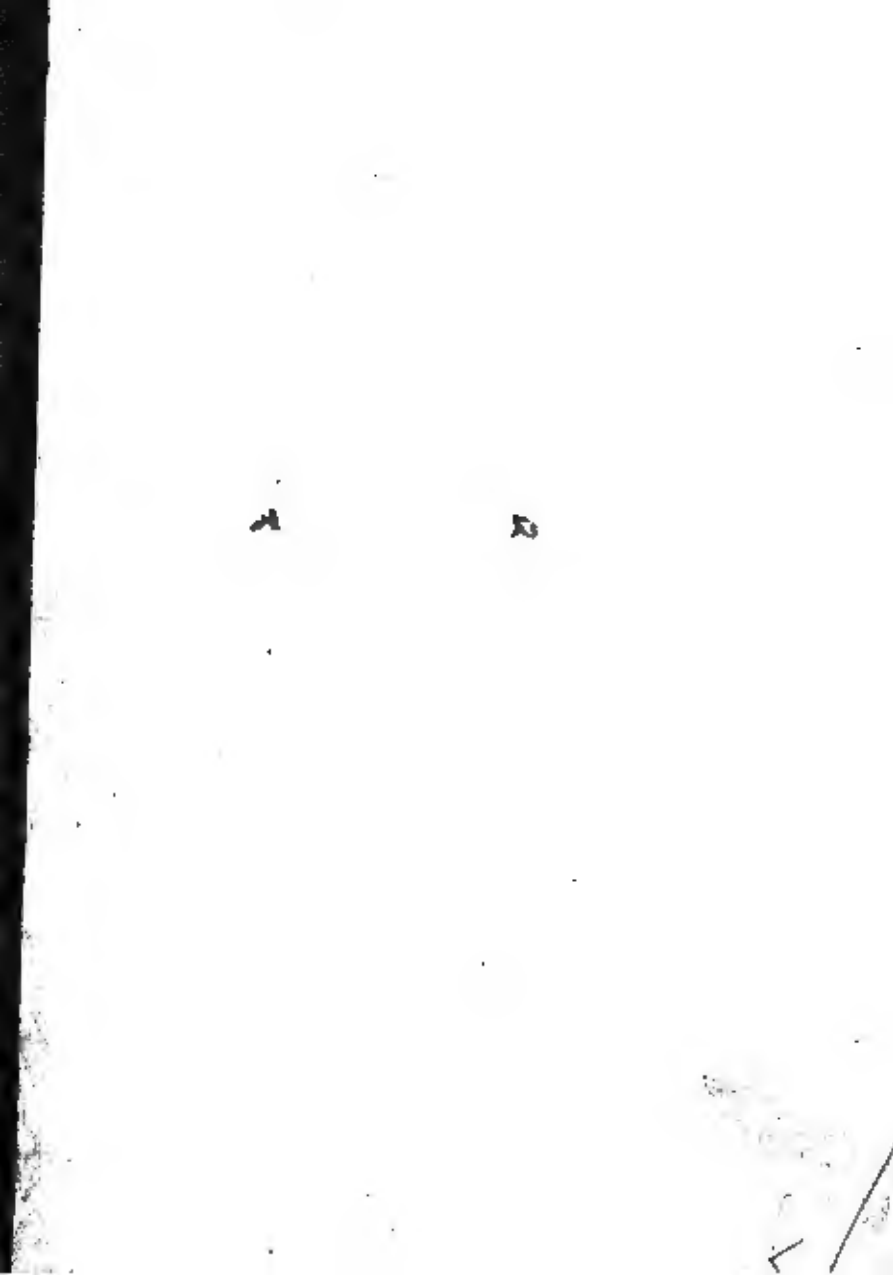
GOVERNMENT OF INDIA

ARCHAEOLOGICAL SURVEY OF INDIA

CENTRAL  
ARCHAEOLOGICAL  
LIBRARY

ACCESSION NO. 19233

CALL No. BPa3 Dha-Kau





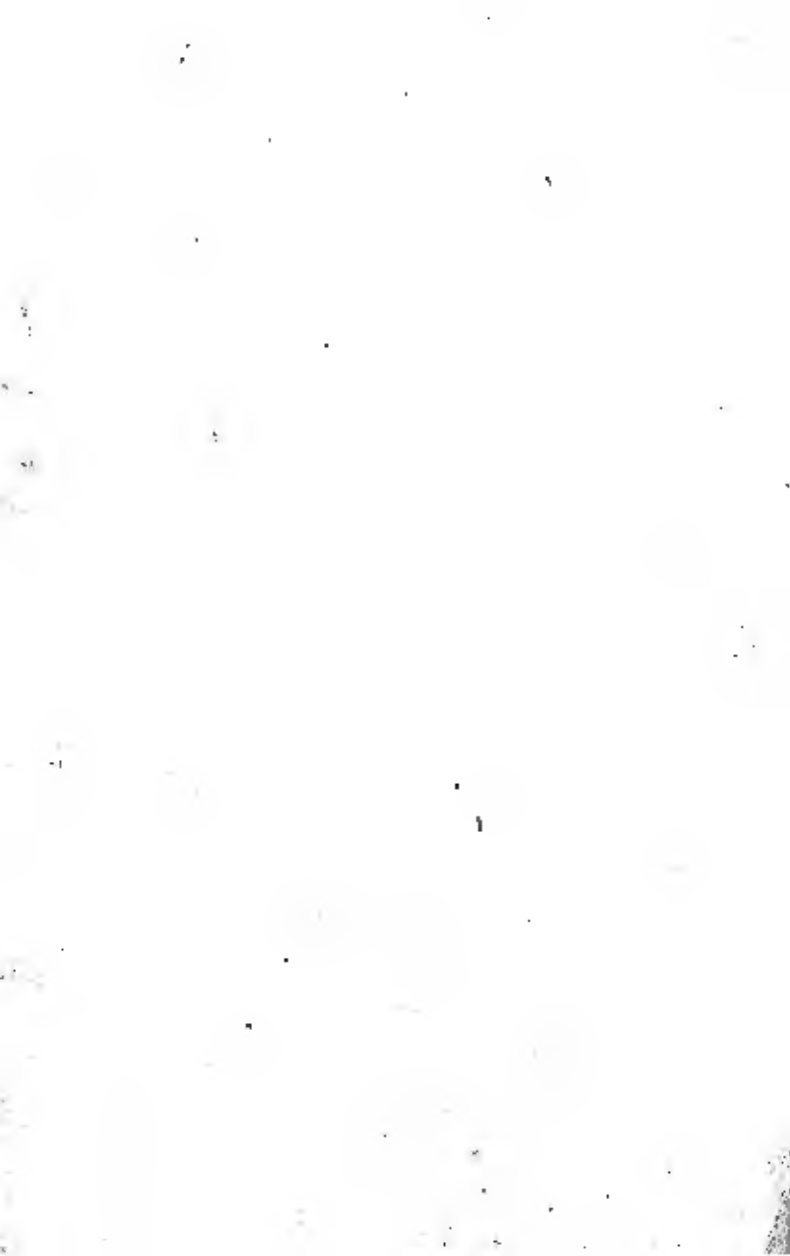
# कर्मपट्ट

यह वे यदि कभी किसी अविनाशी शक्ति की स्मृति हों, तो यह शक्ति









नमो तस्य भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्य



धर्म चक्र प्रवर्तन



THE  
LIBRARY OF THE  
MUSEUM OF MODERN ART  
1000 5th Ave. New York 17, N.Y.

1985

# धम्मपदं

[ मूल पाणि और हिन्दी अनुवाद ]



CENTRAL ARCHAEOLOGICAL  
LIBRARY NEW DELHI.

Acc. No. ~~378~~.....

Date. ~~27/5/59~~.....

Call No. ~~901-8-1-K.10~~.....

अनुवादक

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

BPa 3  
Dha / Karu

करवरी  
१६४६ }

मुद्राब्द  
२४६०

{ मूल्य  
१॥

प्रकाशक—

गयाप्रसाद तिवारी, बी० काम०,  
अध्यक्ष हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स,  
ग्राहगंज, इलाहाबाद ।

---

द्वितीयावृत्ति

---

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL  
LIBRARY, NEW DELHI.

Acc. No 19233.....

Date 29.1.62.....

Call No. B.P. 3..... Shaf. 500

मुद्रक—

गयाप्रसाद तिवारी, बी. काम०,  
अध्यक्ष नारायण प्रेस, नारायण विस्किंग्स,  
ग्राहगंज, इलाहाबाद ।

## तीसरी बार

युद्ध के समय आदमी के जीवन के अतिरिक्त सभी कुछ तो मर्हंगा था। कागज के अभाव में धम्मपद का यह अनुवाद बहुत दिनों से अप्राप्य रहा। श्री० गयाप्रसाद जी तिवारी श्री० काम० के पुत्रवार्ध से यह तीसरी बार छप रहा है। पाद्यारूप और आकार-प्रकार में इतना अन्तर हो गया है कि अब इसे नया संस्करण न कहकर नयी कृति भी कहा जा सकता है।

भाई संचरज जी, सहायक मन्त्री, महाबोधी सभा, सारनाथ ने इसे सदायतापूर्वक छापने की आज्ञा दे दी है—जिसके लिये कृतज्ञ हूँ।

सस्वनारायण कुटीर,  
 हि० सा० सम्मेलन  
 १०—२—४६

आनन्द कौसल्यायन



## दो शब्द

एक पुस्तक को और केवल एक पुस्तक को जीवन भर समीक्षित करने की यदि कभी आपकी इच्छा हुई है तो विश्व के पुस्तकालय में आपको धम्मपद से बढ़कर दूसरी पुस्तक मिलनी कठिन है।

जिस प्रकार महाभारत में भगवद्गीता एक छोटी किन्तु अमूल्य कृति है, उसी प्रकार त्रिपिटक में धम्मपद एक छोटा किन्तु मूल्यवान् रत्न है। काल की दृष्टि से भगवद्गीता की अपेक्षा धम्मपद प्राचीनतर है।

भगवद्गीता की विशेषता है, कई दार्शनिक विचारों के समन्वय का प्रयत्न; इसीलिए गीता के टीकाकारों में आपस में मतभेद है; लेकिन धम्मपद एक ही मार्ग है, एक ही शिक्षा है। उस पथ के पथिक का आदर्श निश्चित है।

यह बात सायद सार्थक है कि गीता की अपेक्षा प्राचीनतर होते हुए भी धम्मपद की केवल एक टीका—धम्मपद-आट्टकया उपलब्ध है, और भगवद्गीता की हैं जिसने पश्चिम उत्तरी भिल-भिल टीकाएँ।

भगवद्गीता की तरह धम्मपद का बड़ा प्रचार है। प्राचीन काल में चीनी, तिब्बती आदि भाषाओं में इसके अनुवाद हुए हैं। वर्तमान काल में संसार की सभी सभ्य भाषाओं में—अंगरेज़ी, जर्मन, फ्रेंच आदि में—वर्षों कई अनुवाद हो चुके हैं। श्री० अल्बर्ट, जे० एलमन्ड अपने अंगरेज़ी अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं :—

“यदि पश्चिम-सभ्य में कभी किसी अविनाशी ग्रन्थ की रचना हुई, तो वह यह है।

“इन वर्षों ने अनेक विचारकों के हृदय में चिन्तन की आग जलाई है। इन्हीं से अनुप्राणित होकर अनेक चीनी यात्री मङ्गोलिया के

मवानक कान्तार और हिमालय की अलंघ्य चोटियों लँघकर भगवान् बुद्ध के चरणों से पूत भारतभूमि के दर्शनार्थ आए। इन्हीं को महाराज अशोक ने—जिन्होंने प्रायद्वय का निषेध किया, गुलामी की प्रथा को कम किया, मनुष्यों और जानवरों तक के लिए अस्पृशता छोले—शिक्षालेखों पर अंकित कराया। आज दो हजार वर्ष से रोम और ईसाइयत की संस्कृति के प्रचार होते रहने पर भी, यूरोप और अमरीका के सभी विद्या-मन्दिरों में—कोपेनहेगन से कैम्ब्रिज तक और शिकागो से सेंटपीटर्सबर्ग (लैनिनग्राद) तक—यह यूरोपियन और अमरीकन लोगों द्वारा भद्रा की दृष्टि से देखे जाते हैं।<sup>११</sup>

बँगला, मराठी, गुजराती आदि भारत की अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी में भी एक से अधिक अनुवाद हैं। निम्नलिखित छः अनुवादों का हमें ज्ञान है :—

१. श्री सूर्यकुमार वर्मा, हिन्दी ( १९०४ )
२. भद्रस्त चन्द्रमणि महास्वधिर, हिन्दी और पालि ( १९०६ ई० )
३. स्वामी सत्यदेव परिभाषक, हिन्दी ( बुद्ध-गीता )
४. श्री विष्णुनारायण, हिन्दी, ( सं० १९८५ )
५. पं० गंगाप्रसाद उपरध्याय पालि-हिन्दी ( १९३२ )
६. त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन ( १९३३ )  
( पालि, संस्कृत, हिन्दी )

छः छः अनुवादों के बाद यह सप्तवाँ अनुवाद ? प्रत्येक मनुष्य की अपनी भद्राञ्जलि अर्पित करने की इच्छा के सिवाय, इसे क्या कहें ? और यों कहने को कह सकते हैं कि अभी तक मिलने अनुवाद निकले उनमें कोई ऐसा नहीं जो धम्मपद-प्रेमियों का हर समय का साथी बन सके—रेल में, गाड़ी में, हर समय उनकी जेब में रह सके। अँगरेज़ी में धम्मपद की बुद्ध-सोसाइटी की ओर से प्रकाशित, मूल पालि सहित, प्रो० एन० के० भागवत का किया हुआ एक बहुत ही सुन्दर अनुवाद कुछ समय से हमारे सामने था। उसी से इस हिन्दी अनुवाद को

प्रेरणा मिली और सौभाग्य से इसे करने के लिए गोरखपुर के श्रीमहा-  
वीरप्रसादजी 'बोहरा' का आतिथ्य भी एक ऐसा सुयोग्य मिल गया,  
जो ऐसे एकाग्रता-अपेक्षित कार्य के लिए आवश्यक था। उन्हीं के  
बाग में रहकर उन्हीं के यहाँ हाथ के बने हुए काराज पर अथ से इति  
तक सारा धम्मपद लिखा गया। इस प्रकार इस पुण्य-कार्य में  
उनका बड़ा हाथ रहा है।

धम्मपद के अनुवाद में मैंने शब्दानुवाद के आग्रह को एक प्रकार  
से निरकुल छोड़े रखा। वही कोशिश रही कि अनुवाद-मात्र पढ़ने-  
वाले को अनुवाद अनुवाद प्रतीत न हो। पता नहीं, कहाँ तक सफल  
हुआ।

लेकिन मूल की रस्सी से भी मैं बँधा ही रहा। अनुवाद परम्परा-  
गत अर्थों को दृष्टि में रखकर ही किया। हाँ, एक दो जगह किसी  
किसी गाथा का अर्थ वैसा भी हो गया है जैसा वह अपने जीवन में  
भासित हुआ।

भाई धर्मरत्न ने पुस्तक को दोहराने, प्रूफ देखने आदि में खूब  
सहायता की। उनकी पैनी आँख के बिना कुछ न कुछ अशुद्धियाँ झर  
रह जातीं। अब जो अशुद्धियाँ, पाठक देखें उनके लिए उत्तरदायी मैं  
ही हूँ।

पारिभाषिक शब्दों से बचे रहने का प्रयत्न करने पर भी कुछ न  
कुछ शब्द आ ही गए। ऐसे शब्दों को अन्त में टिप्पणी सहित दे  
दिया है।

अनुवाद में जिन जिन ग्रन्थों और जिन जिन मित्रों से सहायता मिली  
उन सभी का मैं कितना कृतज्ञ हूँ, उसे लिखकर कैसे प्रकट करूँ ?

मुद्रण-कुटी बिहार,  
सारनाथ,  
२४—५—३८

}

आनन्द कौसल्याधन



## विषय-सूची

	पृष्ठ		पृष्ठ
१—वसकवग्गी	१	१४—मुद्ववग्गी	५१
२—अप्पमादवग्गी	८	१५—सुलवग्गी	५६
३—चित्तवग्गी	१०	१६—पियवग्गी	५८
४—पुप्फवग्गी	१४	१७—कोथवग्गी	६२
५—बालवग्गी	१८	१८—मल्लवग्गी	६६
६—पण्डितवग्गी	२२	१९—बम्मट्टवग्गी	७२
७—अर्हन्तवग्गी	२६	२०—ममावग्गी	७६
८—सहस्सवग्गी	२९	२१—पक्कियणकवग्गी	८१
९—पापवग्गी	३३	२२—निरववग्गी	८५
१०—इन्दवग्गी	३७	२३—नागवग्गी	८९
११—जरावग्गी	४२	२४—तयहावग्गी	९३
१२—असवग्गी	४५	२५—भिक्षुवग्गी	१०१
१३—लोकवग्गी	४८	२६—ब्राह्मणवग्गी	१०८

अमो लस्य ममवर्त्ते भरहो सम्मासमुद्रस्त

## धम्मपदं

### १—यमकवग्गो

(१)

अमोपुब्बज्जमा धम्मो मनोसेट्ठा मनोमया ।

मनसा चे पटुट्ठेन भासति वा करोति वा ।

ततो 'नं सुखमस्येति चक्कं' भव पइतो पयं ॥१॥

सभी धर्म (= अवस्थायें) पहले मन में उत्पन्न होते हैं, मन ही मुख्य है, वे मनीमय हैं । जब आदमी मलिन मन से बोलता वा कार्य करता है, तब कुछ उसके पीछे जैसे ही हो जाता है, जैसे (गाड़ी के) पहिये रेल के पटरों के पीछे पीछे ।

(२)

अमोपुब्बज्जमा धम्मो मनोसेट्ठा मनोमया ।

मनसा चे पसमेन भासति वा करोति वा ।

ततो 'नं सुखमस्येति ज्ञाया' च अनापविनी ॥२॥

सभी धर्म (= अवस्थायें) पहले मन में उत्पन्न होते हैं, मन ही मुख्य है, वे मनीमय हैं । जब आदमी स्वच्छ मन से बोलता वा कार्य करता है, तब कुछ उसके पीछे जैसे ही हो जाता है, जैसे सभी साथ न बोलने वाली ज्ञाया आदमी के पीछे पीछे ।

( ३ )

अक्कोच्छि मं अक्खि मं अजिनि मं अहासि मे ।

ये च सं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥३॥

‘मुझे गाली दी’, ‘मुझे मारा’, ‘मुझे हराया’, ‘मुझे लूट लिया’,  
जो ऐसी बातें सोचते रहते हैं उनका वैर कभी शान्त नहीं होता ।

( ४ )

अक्कोच्छि मं अक्खि मं अजिनि मं अहासि मे ।

ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥४॥

‘मुझे गाली दी’, ‘मुझे मारा’, ‘मुझे हराया’, ‘मुझे लूट लिया’,  
जो ऐसी बातें नहीं सोचते, उन्हीं का वैर शान्त हो जाता है ।

( ५ )

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीथ कुदाचनं ।

अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनत्तनो ॥५॥

वैर, वैर से कभी शान्त नहीं होता; अवैर से ही वैर शान्त होता  
है—यही संसार का सनातन नियम है ।

( ६ )

परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे ।

ये च सत्थं विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ॥६॥

अन्य लोग नहीं विचारते कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे; जो  
विचारते हैं उन ( पण्डितों ) का वैर शान्त हो जाता है ।

( ७ )

सुभानुपत्तिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंयुतं ।

भोजनमिह अमच्छन्तुं कुसीतं हीनवीरियं ।

तं वे पसहति मारो पातो कक्खं च दुब्बलं ॥७॥

जो काम-भोग के जीवन में रत है, जिसकी इन्द्रियाँ उस के काम में नहीं हैं, जिसे भोजन की उचित मात्रा का ज्ञान नहीं है, जो आलसी है, जो उद्योगहीन है, उसे मार जैसे गिरा देता है जैसे वायु दुर्बल पुरुष को ।

( ८ )

असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवृतं ।

भोजनमिह च मत्तञ्चुं सद्धं आरद्धवीरियं ।

तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं च पञ्चत्तं ॥८॥

जो काम-भोग के जीवन में रत नहीं है, जिसकी इन्द्रियाँ उसके काम में हैं, जिसे भोजन की उचित मात्रा का ज्ञान है, जो अढावान् तथा उद्योगी है, उसे मार जैसे नहीं हिला सकता जैसे वायु शिलामय पर्वत को ।

( ९ )

अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति ।

अपेतो वमसच्छेन न सो कासावमरहति ॥९॥

जो अपने मन को स्वच्छ किए बिना काषाय-वज्र को धारण करता है, सत्य और संयम से रहित वह व्यक्ति काषाय-वज्र का अधिकारी नहीं है ।

( १० )

यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो ।

अपेतो वमसच्छेन स वे कासावमरहित ॥१०॥

जिसने अपने मन के मैल को दूर कर दिया है, जो सदाचारी है, सत्य और संयम से युक्त वह व्यक्ति ही काषाय-वज्र का अधिकारी है ।

( ११ )

असारं सारमतिनो सारं चासारदस्सिनो ।

ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा ॥११॥

असार (—वस्तु ) को सार और सार (—वस्तु ) को असार समझनेवाले, झूठे संकल्पों में संलग्न मनुष्य सार (—वस्तु ) को नहीं प्राप्त करते ।

( १२ )

सारञ्च सारतो जत्था असारञ्च असारतो ।

ते सारं नाधिगच्छन्ति सम्मासङ्कप्पगोचरा ॥१२॥

सार (—वस्तु ) को सार और असार (—वस्तु ) को असार समझनेवाले, सच्चे संकल्पों में संलग्न मनुष्य सार (—वस्तु ) को प्राप्त करते हैं ।

( १३ )

यथागारं दुच्छन्नं घुट्ठी समतिविक्कति ।

एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविक्कति ॥१३॥

यदि घर की छत ठीक न हो, तो जिस प्रकार उस में वर्षा का प्रवेश हो जाता है, उसी प्रकार यदि ( संयम का ) अभ्यास न हो, तो मन में राग प्रविष्ट हो जाता है ।

( १४ )

यथागारं सुच्छन्नं घुट्ठी न समतिविक्कति ।

एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविक्कति ॥१४॥

यदि घर की छत ठीक हो, तो जिस प्रकार उसमें वर्षा का प्रवेश नहीं होता, उसी प्रकार यदि ( संयम का ) अभ्यास हो तो मन में राग प्रविष्ट नहीं होता ।

( १५ )

इष सोचति पेक्ष सोचति

प्रापकारी चमयस्थ सोचति ।

सो सोचति सो विह्वल्यति

विस्था कम्मकिलिद्रुमचमो ॥१५॥

पापी मनुष्य दोनों जगह शोक करता है—यहाँ भी और परलोक में भी । अपने दुष्ट कर्म को देखकर वह शोक करता है, पीड़ित होता है ।

( १६ )

इष मोदति पेक्ष मोदति

कृतपुण्यो चमयस्थ मोदति ।

सो मोदति सो प्रमोदति

विस्था कम्मविमुद्धिमचमो ॥१६॥

शुभ कर्म करने वाला मनुष्य दोनों जगह प्रसन्न रहता है—यहाँ भी और परलोक में भी । अपने शुभ कर्म को देखकर वह मुदित होता है, प्रमुदित होता है ।

( १७ )

इष तप्पति पेक्ष तप्पति

पापकारी चमयस्थ तप्पति ।

पापं मे कतम्पि तप्पति

भीष्यो तप्पति दुग्गतिङ्गतो ॥१७॥

पापी मनुष्य दोनों जगह संतप्त होता है, यहाँ भी और परलोक में भी । 'मैंने पाप किया है' सोच संतप्त होता है, दुर्गति को प्राप्त हो और भी संतप्त होता है ।

( १८ )

इथ नन्दति पेथ नन्दति

कत्तपुब्बो उभयत्थ नन्दति ।

पुब्बं मे कत्तस्मि नन्दति

भीय्यो नन्दति सुग्गसिंघसो ॥१८॥

शुभ कर्म करनेवाला मनुष्य दोनों जगह आनन्दित होता है—यहाँ भी और परलोक में भी । 'मैंने शुभ-कर्म किया है' सोच आनन्दित होता है, सुगति को प्राप्त हो और भी आनन्दित होता है ।

( १९ )

वहुपि चे सहितं भासमानो

न तत्करो होति नरो पमत्तो ।

गोपो च गावो गणयं परेसं

न भागवा सामञ्जस्यस्स होति ॥१९॥

धर्म-ग्रन्थों का कितना ही पाठ करे, लेकिन यदि प्रमाद के कारण मनुष्य उन धर्म-ग्रन्थों के अनुसार आचरण नहीं करता, तो दूसरों की गोवें गिनने वाले ग्वालों की तरह वह भ्रमशून्य का भागी नहीं होता ।

( २० )

अप्पमि चे सहितं भासमानो

धम्मस्स होति अनुबन्धकारी ।

रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं

सम्मपपज्जानो सुविसुत्तचित्तो ।

अनुपादियानो इध वा दुरं वा

स भागवा सामव्यस्स हेति ॥२०॥

धर्म-ग्रन्थों को यदि थोड़ा ही पठ करे, लेकिन यदि राग, द्वेष तथा भोद से रहित, कोई व्यक्ति धर्म के अनुसार आचरण करता है तो ऐसा बुद्धिमान्, अनासक्त, यहाँ वहाँ (दोनों जगह) भोगों के पीछे न भागनेवाला व्यक्ति ही भ्रमरत्व का भागी होता है ।

---



## २—अप्रमादवर्गो

( २१ )

अप्रमादो असत-पदं पमादो मञ्चुनो पदं ।

अप्रमादा न मीयन्ति ये पमादा यथा मता ॥ १ ॥

अप्रमाद असत-पद है, प्रमाद भुत्तु का पद । अप्रमादी मनुष्य मरते नहीं, और प्रमादी मनुष्य मृत ही के समान होते हैं ।

( २२ )

एवं विसेसतो अज्ञा अप्रमादमिह परिहृता ।

अप्रमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ॥ २ ॥

अप्रमाद के विषय में उसे विशेष रूप से ज्ञान, आर्यों के आचरण में रत, पण्डित-जन अप्रमाद में प्रसन्न होते हैं ।

( २३ )

ते श्रमिनी साततिका निष्कं दृष्ट्वा परकमा ।

पुस्तन्ति धीरा निष्कारणं योगक्षेमं अनुत्तरं ॥ ३ ॥

ध्यान करनेवाले, जागरूक, नित्य दृढ़ पराक्रम में लगे रहनेवाले धीर-जन ही अनुत्तर योग-क्षेम निर्वाण को प्राप्त करते हैं ।

( २४ )

ज्जुल्लवतो सतिमत्तो

सुचिक्कम्मस्स निसम्मकारिणो ।

सक्यतस्स च धम्मजीविनो

अप्यमत्तस्स यक्षोभिवद्भूति ॥५॥

उद्योगी, जागरूक, पवित्र-कर्म करने वाले, सोच समझ कर काम करनेवाले, संयमी, धर्मानुसार जीविका चलानेवाले, अप्रमादी अनुष्य के यश की वृद्धि होती है ।

( २५ )

अट्टातेन अप्यमादेन सक्यमेन वमेन च ।

धीर्प कथिराथ मेधावी यं ओषो नाभिकीरति ॥ ५ ॥

बुद्धिमान् अनुष्य उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम द्वारा ऐसा हीप बनावे, जिसे बाढ़ हुआ न सके ।

( २६ )

पमादमनुयुज्जन्ति धाला दुम्मेधिनी अना ।

अप्यमादञ्च मेधावी धनं सेट्ठं ख रक्खति ॥ ६ ॥

मूर्ख, दुर्बुद्धि प्रमाद करते हैं । बुद्धिमान् पुण्य भ्रष्टधन की तरह अप्रमाद की रक्षा करते हैं ।

( २७ )

मा पमादमनुयुज्जेथ मा कामरतिसम्भवं ।

अप्यमत्तो हि भायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं ॥७॥

प्रमाद मत करो । काम-भोगों में मत फँसो प्रमाद-रहित हो ध्यान करने से विपुल सुख की प्राप्ति होती है ।

( २८ )

पमाद अप्यमादेन यदा नुवति पविडतो ।

पज्जाभासादमावद्द असोको सोकिणि पज्ज ।

पज्जतट्ठो व सुम्भट्ठे धीरो बाले अवैक्खति ॥ ८ ॥

## ३—चित्तवमो

( ३३ )

फल्गुनं चपलं चित्तं दुरक्षं बुद्धिचारयं ।

वृत्तं करोति मेधावी उसुकारो यः तेजनं ॥ १ ॥

चित्त चंचल है, चपल है, दुरक्ष है, बुद्धि-निवारक है। मेधावी-पुरुष इसे उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे वाण बनानेवाला वाण को।

( ३४ )

वारिजोयं बले स्मितो ओकमोक्त उद्भवतो ।

परिफल्गुति'दं चित्तं मारधेय्यं पद्मातवे ॥ २ ॥

मलाशय से निकालकर स्थल पर फेंक दी गई मछली तड़फड़ाती है। उसी प्रकार चित्त मार के फंदे से निकलने के लिये तड़फड़ाता है।

( ३५ )

दुष्मिग्गहस्स लहुनो यत्थ कामनिपातिनो ।

चित्तस्स दमधो साधु चित्तं दग्गं दग्गं सुखावहं ॥ ३ ॥

कठिनाई से निग्रह किये जा सकनेवाले शीमगामी, जहाँ चाहे वहाँ चले जानेवाले चित्त का दमन करना अशुद्ध है। दमन किया गया चित्त सुख देनेवाला होता है।

( ३६ )

सुदुरसं सुनिपुणं यत्थकामनिपातिनं ।

चित्तं रक्खेय्य मेधावी, चित्तं शुचं सुखावहं ॥ ४ ॥

जब बुद्धिमान् आदमी प्रमाद को अप्रमाद से जीत लेता है, तो प्रशंसा-रूपी प्रासाद पर कड़ा हुआ वह शोकरहित धीर मनुष्य दूसरे शोक-ग्रस्त मूर्ख जनों की ओर उसी तरह देखता है, जैसे पर्वत पर सड़ा हुआ आदमी जमीन पर सड़े हुए आदमियों की ओर ।

( २६ )

अप्पमत्तो पमत्तसु सुत्तसु बहुजागरो ।

अवसत्सं ख सीधस्सो द्वित्वा याति सुमेधसो ॥ ६ ॥

प्रमादियों में अप्रमादी, सोते रहनेवालों में जागरूक, बुद्धिमान्-आदमी उसी प्रकार आगे बढ़ जाता है, जैसे शीघ्र-गामी घोड़ा दुर्बल घोड़े से ।

( ३० )

अप्पमादेन मघवा देवाम सेट्ठं गतो ।

अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा ॥ १० ॥

अप्रमाद से ही इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना । इसलिए अप्रमाद की सदा प्रशंसा होती है और प्रमाद की निन्दा ।

( ३१ )

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयवस्ति वा ।

सञ्ज्योजनं अणुं धूलं बहं अग्गीव गच्छति ॥ ११ ॥

अप्रमाद में रत रहने वाला या प्रमाद से भय खाने वाला भिक्षु, आग की तरह, छोटे-मोटे बन्धनों को जलाता हुआ जाता है ।

( ३२ )

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयवस्ति वा ।

अमच्चो परिहाणाय निष्वाणस्सेव सन्धिके ॥ १२ ॥

अप्रमाद में रत रहने वाले या प्रमाद से भय खाने वाले भिक्षु का प्रतन होना असम्भव है । वह निर्वाण के समीप है ।

बुद्धिमान् मनुष्य बुद्धिरता से दिखाई देने वाले, अत्यन्त चालाक, वहाँ चाहे वहाँ चले जानेवाले चित्त की रक्षा करे। सँभाल कर रक्खा गया चित्त मुल देने वाला होता है।

( ३७ )

दूरङ्गमं एकधरं असरीरं गुहास्रयं ।

ये चित्तं सन्नमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारवन्धना ॥५॥

जो दूरगामी, अकेले विचरनेवाले, निराकार, गुहाआस्रय चित्त का संयम करेंगे, वे ही मार के बन्धन से मुक्त होंगे।

( ३८ )

अनवद्वितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो ।

परिलवपसादस्स पब्बा न परिपूरति ॥६॥

जिसका चित्त स्थिर नहीं, जो सद्धर्म को जानता नहीं, जिसका चित्त प्रसन्न नहीं वह कभी प्रज्ञानान् नहीं हो सकता।

( ३९ )

अनकमुतचित्तस्स अनन्वाहृतचेतसो ।

पुब्बपापपहीणस्स नत्थि जागरतो मयं ॥ ७ ॥

जिसका चित्त मल-रहित है, जिसका चित्त स्थिर है, जो पाप-पुण्य-विहीन है, उस जागरूक पुरुष के लिए मय नहीं।

( ४० )

कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा

नगरूपमं चित्तमिदं ठप्पेत्वा ।

बोधेयं मारं पब्बायुधेन

जितं च रज्जे अनिदेसनो सिया ॥८॥

शरीर की बड़े के समान ( नगर ) और चित्त को नगर के समान जान, प्रशारणी हथियार लेकर मार से युद्ध करे । जीत लेने पर भी चित्त की रक्षा करे तथा अनासक्त रहे ।

( ४१ )

अचिरं वत'थं काशो पठविं अधिसेस्सति ।

छुड़ो अपेक्षविख्याणो निरर्थं 'थ कलिङ्गरं ॥ ६ ॥

अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना-रहित हो निरर्थक काठ की भीति जमीन पर जा पड़ेगा ।

( ४२ )

विशो दिसं यन्तं कथिरा वेरी वा पन वेरिनं ।

मिच्छापण्हितं चित्तं पापियो' नं ततो करे ॥ १० ॥

शत्रु शत्रु की वा वैरी वैरी की जितनी हानि करता है, कुमार्ग की ओर गया हुआ चित्त मनुष्य की उससे कहीं अधिक हानि करता है ।

( ४३ )

न तं भाता पिता कथिरा अकथ्ये वापि च व्यातका ।

सम्मापण्हितं चित्तं सेय्यसो'नं ततो करे ॥ ११ ॥

न माता-पिता, न दूसरे रिश्तेदार, आदमी की उतनी भलाई करते हैं, जितनी भलाई सन्मार्ग ■ ओर गया हुआ चित्त करता है ।

## ४—पुष्पवग्गो

( ४४ )

को इमं पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं ।

को घम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुष्पमिव पचेस्सति ॥१॥

कौन है जो देवताओं सहित इस यमलोक तथा इस पृथ्वी को जीतेगा ! कौन चतुर-पुरुष अच्छी तरह से उपदिष्ट धर्म के पदों का पुष्प की भाँति चयन करेगा !

( ४५ )

सेखो पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इदं सदेवकं ।

सेखो घम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुष्पमिव पचेस्सति ॥२॥

शैक्ष ही है, जो देवताओं सहित इस यमलोक तथा इस पृथ्वी को जीतेगा ! चतुर शैक्ष अच्छी तरह से उपदिष्ट धर्म के पदों का पुष्प की भाँति चयन करेगा !

( ४६ )

फेणुपमं कायमिमं विविखा

मरीचियम्मं अभिसम्भुधानो ।

छेत्त्वान मारस्स पपुष्फकानि

अदस्सनं मञ्जुराजरस गच्छे ॥३॥

इस कावा को फेन के समान या मरु-मरीचिका के समान जान, मार के फंदे को छोड़, यमराज को न दिखाई देनेवाला बने ।

( ४७ )

पुष्कानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं ।

सुप्तं गामं सहोयोधं मरुचु आदाय गच्छति ॥ ४७ ॥

( राग आदि ) पुष्पों के चुनने में आसक्त आदमी को मृत्यु वैसे ही बहा ले जाती है, जैसे लीये हुए गाँव को ( नदी को ) बड़ी बाढ़ ।

( ४८ )

पुष्कानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं ।

अतित्तं येव कामेसु अन्तको कुरुते वसं ॥ ४८ ॥

( राग आदि ) पुष्पों के चुनने में आसक्त आदमी को यमराज काम-भोगों में अतृप्त अवस्था में ही अपने वश में कर लेता है ।

( ४९ )

यथापि भमरो पुष्पं वराणगम्भं अहेठयं ।

पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे ॥ ४९ ॥

जित प्रकार फूल के रस या गन्ध को बिना हानि पहुँचाये भमर रस को लेकर चल देता है, उसी प्रकार मुनि गाँव में बिचरकरे ।

( ५० )

न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं ।

अत्तनोव अवेवसेव्य कतानि अकतानि च ॥ ५० ॥

न दूसरों के दोष, न दूसरों के कृत-अकृत को देखे । ( आदमी को चाहिए कि वह ) अपने ही कृत-अकृत को देखे ।

( ५१ )

यथापि रुधिरं पुष्पं वराणगम्भं अगम्भकं ।

एवंसुभासिता वाचा अफला होति अकुम्भवतो ॥ ५१ ॥



जिस प्रकार सुन्दर वर्ण-युक्त ( किन्तु ) गन्ध-रहित पुष्प होता है, उसी प्रकार कथनानुसार कार्य न करने वाले की सुभाषित वाणी निष्फला होती है ।

( ५२ )

यथापि हचिरं पुष्पं घण्टावन्तं सगन्धकं ।

एवं सुभासिता वाचा सफला होति सकुण्डलतो ॥ ६ ॥

जिस प्रकार सुन्दर वर्ण-युक्त सुगन्ध-युक्त पुष्प होता है, उसी प्रकार कथनानुसार कार्य करनेवाले की सुभाषित वाणी सफला होती है ।

( ५३ )

यथापि पुष्करासिन्धुः कयिरा मालागुणे बहु ।

एवं जातेन मन्थेन कत्तम्बं कुसलं बहु ॥ १० ॥

जिस प्रकार कोई फूलों के ढेर में से बहुत थोड़ी मालायें गूँथे, उसी प्रकार संसार में पैदा हुये प्राणी को चाहिये कि वह बहुत से शुभ कर्म करे ।

( ५४ )

न पुष्पगन्धो पटिघातमेति

न चन्दनं तगरमल्लिका वा ।

सततञ्च गन्धो पटिघातमेति

सध्वा दिसा सप्पुरिसो पचाति ॥ ११ ॥

न तो पुष्पों की सुगन्ध, न चंदन की सुगन्ध न तगर वा खमेली की सुगन्ध हवा के विरुद्ध जाती है; लेकिन सत्पुरुषों की सुगन्ध हवा के विरुद्ध भी जाती है । सत्पुरुष सभी विद्याओं में ( अपनी सुगन्ध ) फैलाते हैं ।

( ५५ )

चन्दनं तगरं वापि उत्पलं अथ वत्सिकी ।

एतेषां गन्धजातानां सीतलगन्धो अनुत्तरो ॥१२॥

चन्दन, तगर कमल या जूही, इन सभी की सुगन्धियों से सदाचार की सुगन्ध बढ़कर है ।

( ५६ )

अप्यमत्तो अयं गन्धो यार्थं तरगचन्दनी ।

यो च सीतलपत्रं गन्धो याति देवेषु उत्तमो ॥ १३॥

यह जो तगर और चन्दन की गन्ध है यह अल्प मात्रा है । सदाचारियों की उत्तम सुगन्ध देवताओं ( तक ) में फैलती है ।

( ५७ )

तेषां सम्पन्नसीतानां अप्यमाद्विहारिनं ।

सम्मदब्बाविमुत्तानां भारो भर्गो न विन्दति ॥१४॥

उन सदाचारियों, निरालस विचरनेवालों तथा ज्ञान द्वारा पूरी तरह से मुक्त हुआओं के मार्ग को भार नहीं रोकता है ।

( ५८ )

तथा संकरधानस्मिं चष्मिन्तस्मिं महापथे ।

पदुमं तस्य आयेय सुचिगन्धं मनोरमं ॥१५॥

( ५९ )

एवं संकार भूतेषु अन्धभूते पुथुजने ।

अतिरोचति पद्माय सम्मासम्बुद्धासावको ॥१६॥

त्रिषु प्रकार महापथ पर केंके हुए कूड़े के ढेर में सुन्दर सुगन्धित सुलार का फूल पैदा हो, उसी प्रकार कूड़े के सड़क अन्धे अज्ञ जनों में सम्यक् सम्बुद्ध का शिष्य ( अपनी ) प्रज्ञा से प्रकाशमान होता है ।

## ५.—बालगो

( ६० )

दीक्षा जागरतो रस्ति दीपं समस्तस्य योजनं ।

वीधो बलानं संसारो सद्वर्त्म अधिजानतं ॥१॥

जागते रहनेवाले की रात लम्बी हो जाती है । पके हुये का योजन लम्बा हो जाता है । इसी प्रकार सद्धर्म को न जानने वाले मूर्ख आदमी का संसार ( = आवगमन ) लम्बा हो जाता है ।

( ६१ )

चरन्ने नाधिगच्छेद्य सेय्यं सदिसमसत्तो ।

एक चरिचंदल्लहं कथिरा नत्थि बाले सहायता ॥२॥

यदि विचरण करते हुये, अपने से श्रेष्ठ वा अपने जैसे साथी को न पाये, तो आदमी हृदयपूर्वक शंका ही रहे । मूर्ख आदमी की संगति ( अच्छी ) नहीं ।

( ६२ )

पुत्ता मत्थि घनमत्थि इति बालो विह्वलति ।

अत्ता हि असत्तो नत्थि कुतो पुत्ता कुतो घनं ॥ ३ ॥

‘पुत्र मेरे है’, ‘घन मेरा है’ सोच, मूर्ख आदमी दुःख पाता है । जब शरीर ( तक ) अपना नहीं, तो कहाँ पुत्र और कहाँ घन !

( ६३ )

यो बालो मब्बती बाल्यं परिब्रतोऽपि तेन सो ।

बालो च परिब्रतमानी, स वे बालो’ति बुवति ॥ ४ ॥

यदि मूर्ख आदमी अपने को मूर्ख समझे, तो उठने अंश में तो वह बुद्धिमान है। असली मूर्ख तो वह है जो मूर्ख होते हुए अपने आपको बुद्धिमान समझता है।

( ६४ )

यावजीवमपि चे बालो परित्तं परिरुपासति ।

■ सो धम्मं विजानाति वन्वी सुपरसं यथा ॥५॥

मूर्ख आदमी चाहे जन्म भर परित्तों की संगति में रहे; वह सद्धर्म को नहीं जान सकता, जैसे कड़वी दाल के स्वाद को।

( ६५ )

सुहृत्तमपि चे विज्जु परित्तं परिरुपासति ।

स्वल्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सुपरसं यथा ॥६॥

बुद्धिमान आदमी चाहे सुहृत् भर ही परित्तों की संगति में रहे; वह सद्धर्म को जान लेता है जैसे जिह्वा दाल के रस को।

( ६६ )

वरन्ति बाला दुस्मेधा अभिरोनेव अचना ।

करोन्ता पापकं कम्मं यं होति कटुकफलत्वं ॥७॥

मूर्ख दुर्बुद्धि लोग पाप-कर्म करते हुए, जिसका फल कटुवा होता है, अपने आप अपने शत्रु की तरह आचरण करते हैं।

( ६७ )

न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अमुतप्पति ।

यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं पद्विसेवसि ॥८॥

उस काम का करना अच्छा नहीं जिसे करके पीछे पड़ना पड़े, और जिसके फल को रोते हुए भोगना पड़े।

( ६८ )

तच्च कम्मं कतं साधु यं कत्वा नानुत्पप्पति ।

यस्स पत्तीतो सुमनो विपाकं पट्टिसेवति ॥६८॥

उस काम का करना अच्छा है, जिसे करके पीछे पछताना न पड़े,  
और जिसका फल प्रसन्न-चित्त होकर भोगना मिले ।

( ६९ )

मच्छुवा मज्जति बालो याव पापं न पणति ।

यवा च पणति पापं अथ बालो दुक्खं निगच्छति ॥६९॥

जब तक पाप-कर्म फल नहीं देता तब तक भूल आदमी उसे  
मधु की तरह ( मीठा ) समझता है, लेकिन जब पाप-कर्म फल देता  
है, तब उसे दुःख होता है ।

( ७० )

मासे मासे कुसग्गेन बालो भुज्जेथ भोजनं ।

न सो संखतधम्मनं कलं अगघति सोलसिं ॥७०॥

यदि भूल आदमी महीने महीने पर ( केवल ) कुशा की नोक से  
भी भोजन करे, तो भी वह धर्म के जानकारों के सोलहवें हिस्से के  
सावर नहीं हो सकता ।

( ७१ )

न हि पापं कतं कम्मं सव्वजु खीरं च मुचति ।

वहन्तं बालमन्वेति मस्मच्छञ्जोष पावको ॥७१॥

पापकर्म ताजे दुःख की भाँति दुरन्त विकार नहीं लाता । वह मस्म  
से ढकी आग की तरह जलाता हुआ भूल आदमी का पीछा करता है ।

( ७२ )

यावदेव अनस्थाय वत्तं बालस्स जायति ।

हन्ति बालस्स सुक्कंसं मुदमस्स विपातयं ॥७२॥

मूर्ख आदमी का जितना ज्ञान है सब उसके लिए अनर्पक होता है । उसकी मूर्खा (= शिर = प्रज्ञा ) को गिराकर उसके शुभ 'कर्मों' का नाश कर देता है ।

( ७३ )

असतं भावनमिच्छेय्य पुरेस्सारस्व भिक्खुसु ।  
आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च ॥१४॥

( ७४ )

समेव कृतमव्यस्तु गिही पव्वजिता उभो ।  
समेवातिवसा अस्स किंवाकिच्चेसु किस्मच्चि ।  
इति बलस्स सकुप्पो इच्छा मानो च वड्ढति ॥१५॥

अप्रसूत वस्तु की चाह करता है, भिक्षुओं में बढ़ा बनने की चाह करता है, मठों और विहारों का स्वामी बनने की चाह करता है, दूसरे कुलों में पूजित होना चाहता है, 'एहस्प और प्रव्रजित दोनों मेरा ही किया मानें' चाहता है, 'कृत्य अकृत्यों में मुझ पर ही निर्भर रहें' चाहता है—इसी प्रकार के संकल्प करनेवाले मूर्ख आदमी की इच्छाएँ और अभिमान बढ़ता है ।

( ७५ )

अव्व्या हि लामूपनिसा अव्व्या निव्वान-गामिनी ।  
एवमेतं अभिव्वाय भिक्खू बुदस्स सावको ॥  
सत्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुज्झये ॥१६॥

साम का रास्ता दूसरा है और निर्वाण का दूसरा । इसे इस प्रकार जानकर बुद्ध का शिष्य भिक्षु सत्कार की इच्छा न करे, विवेक (= एकान्तचर्या) की वृद्धि करे ।

## ६—परिहृतवग्भो

( ७६ )

निधीनं च पवस्तारं यं पस्से पस्से वज्ज-दस्सिनं ।

निग्गय्यवादिं मेधावि तादिसं पण्डितं भजे ।

तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो ॥ १ ॥

जो आदमी अपना दोष दिखानेवाले को ( भूमि में छिपे ) धन दिखानेवाले की तरह समझे, जो संयम के समर्थक, मेधावी, पण्डित की संगति करे, उस आदमी का कल्याण ही होता है, अकल्याण नहीं ।

( ७७ )

ओषदेय्यानुसासेय्य असन्ना च निवारणे ।

सतं हि सो पियो होति असतं होति अप्पियो ॥ २ ॥

जो उपदेश दे, अनुशासन करे, अनुचित कार्य से रोके, वह सत्पुरुषों को प्रिय होता है, असत्पुरुषों को अप्रिय ।

( ७८ )

न भजे पापके मित्रे न भजे पुरिसाधमे ।

भजेय मित्रे कल्याणे भजेय पुरिसुत्तमे ॥ ३ ॥

न दुष्ट मित्रों की संगति करे, न अधम पुरुषों की संगति करे ।  
अच्छे मित्रों की संगति करे, उत्तम पुरुषों की संगति करे ।

( ७९ )

धम्मपीठी सुखं सेति विप्पसम्मेन चेतसा ।

अरियप्पवेदिते धम्मे सक्का रमति पण्डितो ॥ ४ ॥

धर्म ( २४ ) का पान करनेवाला प्रसन्नचित्त हो सुख-पूर्वक सोता है । पश्चिमत ( जन ) सदा आयों के बताये धर्म में रमण करता है ।

( ८० )

सर्वकं हि नश्यन्ति नेत्तिका लसुकारा नमयन्ति ते जनं ।

दाहं नमयन्ति तच्छका अन्तानं दमयन्ति पश्चिमा ॥५॥

( पानी ) से जानेवाले पानी से जाते हैं, बाण बनानेवाले बाण नवाते हैं, बकई लकड़ी नवाते हैं और पश्चिमतजन अपना दमन करते हैं ।

( ८१ )

सेतो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।

एवं निष्पापसंसासु न समिञ्जन्ति पश्चिमा ॥६॥

जिस प्रकार ठोस पहाड़ हवा से नहीं डोलता, उसी प्रकार पश्चिमत निन्दा और प्रशंसा से कम्पित नहीं होते ।

( ८२ )

यथापि रहदो गम्भीरो विष्पसन्नो अनाविलो ।

एवं धम्मानि सुत्वा न विष्पसीदन्ति पश्चिमा ॥७॥

पश्चिमत जन धर्म को सुनकर अथाह, स्वच्छ स्थिर तालाब की तरह प्रसन्न चित्त होते हैं ।

( ८३ )

सक्यत्थ वे सप्पुरिसा भजन्ति

न कामकामा लपयन्ति सन्तो ।

सुत्तेन फुट्ठा अथवा दुत्तेन

न उच्चावचं पश्चिमा वत्सयन्ति ॥ ८ ॥

सप्पुरष कहीं प्राप्तक नहीं होते । वह काम मोगों के लिए बात नहीं बनाते । उन्हें चाहे दुःख हो चाहे सुख, पश्चिमतजन विकार को प्राप्त नहीं होते ।



( ८४ )

न अत्तहेतुं न परस्स हेतुं

न पुत्तमिच्छे न घनं न रद्धं ।

न इच्छेय्य अधम्ममेन समिद्धिमत्तनो

स सीलधा पळयवा धम्मिको सिया ॥६॥

( अधर्म से ) न अपने लिये पुत्र धन या राष्ट्र की इच्छा करे  
( न दूसरे के लिये ) । जो अधर्म से अपनी उन्नति नहीं चाहता,  
वही सदाचारी है, प्रशान्त है, धार्मिक है ।

( ८५ )

अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो ।

अथायं इतरा पजा तीरमेवानुवापति ॥७॥

जो पार पहुँचते हैं वह तो मनुष्यों में थोड़े ही हैं, बाकी आदमी  
तो किनारे पर ही दौड़ते रहते हैं ।

( ८६ )

ये च लो सम्मदक्खाते धम्मे धम्मानुवसिनो ।

ते जना पारमेस्सन्ति भञ्जुधेय्यं सुदुत्तरं ॥८॥

जो मली भाँति स्पष्ट कर दिये गये धर्म के अनुसार आचरण  
करते हैं, वही भृश पक्षीय दुस्तर ( संसार सागर ) को पार करेंगे ।

( ८७ )

कण्हं धम्मं विप्पहाय सुक्कं भावेय परिब्रतो ।

ओका अनोकं आगम्म विवेके पत्थ दूरमं ॥९॥

( ८८ )

सप्पाभिरतिमिच्छेय्य हित्था कामे अकिञ्चनो ।

परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पण्डितो ॥१०॥

पाप-कर्म को छोड़कर परिब्रत जन शुभ कर्म करे । घर से बे-घर हो  
दूर जा एकान्त-सेवन करे । काम भोगों को छोड़ सर्वस्व त्यागी बन  
वहीं रत रहने की इच्छा करे । परिब्रत ( जन ) अपने चित्त के मैल  
को दूर करे ।

( नट )

येसं सम्बोधि-अङ्गेषु सम्मा चित्तं सुभावितां ।

आदान-पटिनिससगो अनुपादाय ये रता ।

स्त्रीणासवा जुतीमन्तो ते लोके परिनिब्रुता ॥१४॥

जिनका चित्त सम्बोधि-अङ्गों में मल्ली भाँति अभ्यस्त है, जो  
परिग्रह के परित्यागपूर्वक अपरिग्रह में रत हैं, चित्त-मल से रहित ऐसे  
शु-तिमान् ( पुरुष ) हो लोक में निर्वाह-प्राप्त हैं ।

## ७—अरहन्तवर्गो

( ६० )

गतद्विनो विसोकस्स विष्णुत्तस्स संबधि ।

सन्धगन्धप्यहीणस्स परित्ताहो न विज्जति ॥१॥

जिसका मार्ग समाप्त हो गया, जो शोकरहित है, जो सर्वथा विदुक्त है, जिसकी सभी प्रणियों क्षीण हो गईं, उसके लिये परिताप नहीं ।

( ६१ )

उद्युज्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।

इंसा 'व पङ्कलं हित्वा ओफमोक्कं अहन्ति ते ॥२॥

स्मृतिमान् उद्योग करते हैं । वे घर में नहीं रहते । जिस प्रकार इस छुद्र जलशय को छोड़ जाते हैं उसी प्रकार वे घर को छोड़कर चले जाते हैं ।

( ६२ )

येसं सन्निचयो तत्थि ये परिब्बातभोजना ।

सुब्बतो अनिमित्तो च विमोक्खो यत्त गोचरो ।

आकासे 'व सकुत्तानं गति तेसं दुरजया ॥३॥

जो संन्यास नहीं करते, जिनको भोजन की उचित मात्रा प्राप्त है, शुद्धता-स्वरूप तथा निमित्त-रहित निर्वाण जिनके गोचर हैं, उनकी गति उसी प्रकार अशुभ है जिस प्रकार आकाश में पक्षियों की गति ।

( ९३ )

यस्मात्सवा परिकल्पीया आहारे च अनिश्चितो ।

सुख्यतो अनिमित्तो च विमोक्षो यस्स गोचरो ।

आकासे च सकुन्तानं पदं तस्स दुरभया ॥४॥

जिसके आश्रय क्षीण हो गये, जो आहार में आशक्त नहीं, शून्यता स्वरूप तथा निमित्त-रहित नर्वाण जिसके गोचर है, उसकी गति उसी प्रकार अज्ञेय है जैसे आकाश में पक्षियों की गति ।

( ९४ )

यस्मिन्निष्याणि समर्थं गतानि,

अस्मा यथा सारथिना सुदन्ता ।

पहीनमानस्स अनासकस्स,

देवापि तस्स पिह्यन्ति साविनो ॥५॥

सारथी द्वारा सुशिक्षित घोड़ों की तरह जिसकी इन्द्रियों शांत हैं, जिनका अभिमान नष्ट हो गया है, जो आश्रय-रहित है, ऐसे ( पुत्र ) की देवता भी स्तुहा करते हैं ।

( ९५ )

पठवीसमो नो विकल्पाति इन्द्रस्त्रीलूपमो तादि सुख्यतो ।

रह्वो च अपेतकहमो संसारा न भवन्ति तादिनो ॥६॥

इन्द्रकील के समान ( अचल ) व्रतधारी उसी तरह सुख नहीं होता जैसे पृथ्वी । उस स्थिर पुत्र में उसी तरह संसार ( मल ) नहीं रहता जैसे कर्दम-रहित सरोवर में ।

( ९६ )

सन्तं अस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च ।

सन्मदब्बाविमुत्तस्स उपसन्तस्स साविनो ॥७॥

उपशान्त, ज्ञान द्वारा पूरी तरह मुक्त हुए उस स्थिर चित्त (पुरुष) का मन शान्त होता है, वाणी शान्त होती है ।

( ६० )

अस्सज्जो अकतळ्ळु च सन्धिकळेदो च यो नरो ।

इतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो ॥८॥

वो ( अन्ध- ) भट्ट से रहित है, जिसने निर्वाण को जान लिया है, जिसने बन्धन को काट दिया है, जिनके ( पुनर्जन्म की ) शृंखलाएँ नहीं, जिसने ( विषय-भोग की ) आशा को त्याग दिया है वही उत्तम पुरुष है ।

( ६८ )

गामे वा यदि वा रज्ज्ये निम्ने वा यदि वा धले ।

वत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणोप्यकं ॥९॥

गाँव हो वा जङ्गल, नीची भूमि हो वा ( ऊँचा ) स्थल, जहाँ अर्हत लोग विहार करते हैं वही रामणीय-भूमि है ।

( ६९ )

रमणीयानि अरज्ज्यानि यत्थ न रमते जनो ।

वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥१०॥

रमणीय वन जहाँ लोभारत लोभ रमण नहीं करते वहाँ वीतरागी रमण करते हैं, क्योंकि वह काम-भोगों के पीछे पीड़नेवाले नहीं होते ।

## ८—सहस्सवम्भो

( १०० )

सहस्समपि चे वाथा अनत्यपदसंहिता ।

एकं अत्यपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥१॥

अनर्थकारी-पदों से कुछ सहस्रो वाथियों से एक उपयोगी पद भेद्य है जिसे सुनकर शान्ति प्राप्त हो ।

( १०१ )

सहस्समपि चे गाथा अनत्यपदसंहिता ।

एकं गाथापदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥२॥

अनर्थकारी-पदों से कुछ सहस्रो गायार्थों से एक उपयोगी गाथा भेद्य है, जिसे सुनकर शान्ति हो ।

( १०२ )

यो च गाथा सत्तं भासे अनत्यपदसंहिता ।

एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥३॥

अनर्थकारी-पदों से कुछ कोई सौ गायार्थें कहे । उनसे धर्म का एक पद भेद्य है, जिसे सुनकर शान्ति होता है ।

( १०३ )

यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मात्तुसे जिजे ।

एकं न जेय्यमात्तानं स वे सङ्गामज्जुत्तमो ॥४॥

एक आदमी संग्राम में लाखों आदमियों को जीत ले, और एक दूसरा अपने आपको जीत ले । यह दूसरा आदमी ही ( सच्चा ) संग्राम-विजयी है ।

( १०४ )

अप्ता हवे जितं सेय्यो या चायं इतरा पजा ।

अपतदन्तस्स पोसस्स निषं सञ्जयतचारिनो ॥५॥

( १०५ )

नेष देवो न गंधर्वो न मारो सह ब्रह्मना ।

जितं अपजितं कयिरा तथारूपस्स जन्तुनो ॥६॥

- दूसरों को जीतने की अपेक्षा अपने को ही जीतना श्रेष्ठ है । जिस आदमी ने अपने आपको दमन कर लिया, जो अपने को नित्य संयत रखता है; उस आदमी की जीत को न देवता, न गन्धर्व न ब्रह्मा सहित मार ही, हार में परिणत कर सकते हैं ।

( १०६ )

मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सतं समं ।

एकञ्च भावित्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।

सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥७॥

एक आदमी सहस्र (दक्षिणा) के महीने महीनेसौ वर्ष तक यज्ञ करे, और एक दूसरा आदमी किसी परिशुद्ध-मनवाले का मुहुर्त्त भर भी स्तुति करे । सो वर्ष के हवन से वह मुहुर्त्त भर की पूजा ही श्रेष्ठ है ।

( १०७ )

यो च वस्ससतं जन्तु अग्निं परिवरे वने ।

एकं च भावित्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।

सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥८॥

एक आदमी सौ वर्ष तक वन में रह करे, और एक दूसरा आदमी किसी परिशुद्ध मनवाले का मुहूर्त भर भी सत्कार करे। सौ वर्ष के रह से वह मुहूर्त भर की पूजा ही भेड़ है।

( १०८ )

यं किंचि विद्वत् च हुतं च त्वोके,

संवच्छरं यजेथ पुण्यपेक्षो ।

सज्जन्ति सं न धनुर्भागमेति,

अभिवादानां सकृदुगतेषु सेव्यो ॥६॥

पुरुष की इच्छा से वर्ष भर जो यज्ञ और हवन करे, वह सब सरल चित्त पुरुष को किये गए अभिवादन के चौथे हिस्से के बराबर भी नहीं है। सरल-चित्त पुरुषों को किया गया अभिवादन ही भेड़ है।

( १०९ )

अभिवादनसीतिस्स निरुचं बद्धापंचायिनो ।

चत्वारो बन्मा वदन्ति आयु वरयो सुखं व्रतं ॥१०॥

जो अभिवादनशील है, जो नित्य बड़ों की सेवा करता है उसकी आयु, वर्ष, सुख तथा व्रत में वृद्धि होती है।

( ११० )

यो च वत्ससत् जीवे दुस्सीलो असमाहितो ।

एकाहं जीवितं सेव्यो सीलवन्तस्स भायिनो ॥११॥

दुराचारी और चित्त की एकाग्रता से हीन व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से सदाचारी और ध्यानी का एक दिन का जीवन भी भेड़ है।

( १११ )

यो च वत्ससत् जीवे दुष्पञ्चो असमाहितो ।

एकाहं जीवितं सेव्यो पट्ठ्यावन्तस्स भायिनो ॥१२॥



सुख्यञ्च और विष की एकाग्रता-हीन व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से शवान् और प्यानी का एक दिन का जीवन भेद है ।

( ११२ )

यो च वस्ससत्तं जीवे कुसीतो हौनवीरियो ।

एकाहं जीवितं सेय्यो विरियमारभतो वल्लहं ॥१३॥

आलसी और अनुद्योगी के सौ वर्ष के जीवन से इकतापूर्वक उद्योग करनेवाले का एक दिन का जीवन भेद है ।

( ११३ )

यो च वस्ससत्तं जीवे अपस्सं उदयव्ययं ।

एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयव्ययं ॥१४॥

उत्पत्ति और विनाश पर विचार न करते हुए सौ वर्ष तक जीने से उत्पत्ति और विनाश पर विचार करते हुए एक दिन का जीना भेद है ।

( ११४ )

यो च वस्ससत्तं जीवे अपस्सं अमत्तं पदं ।

एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो अमत्तं पदं ॥१५॥

अमृत पद ( निर्वाण ) को न देखते हुए सौ वर्ष तक जीने से अमृत-पद को देखते हुए एक दिन जीना भेद है ।

( ११४ )

यो च वस्ससत्तं जीवे अपस्सं धम्ममुत्तमं ।

एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो धम्ममुत्तमं ॥१६॥

उत्तम धर्म की ओर ध्यान न देते हुए सौ वर्ष के जीने से उत्तम धर्म की ओर ध्यान देते हुए एक दिन जीना भेद है ।

## ६—पापवग्गो

( ११६ )

अमित्तरेय कल्याणे पापा चित्तं निवारये ।

दग्धं हि करोसो पुब्बं पापस्मिं रमस्ते मनो ॥ १ ॥

शुभ कर्म करने में जल्दी करे, पापों से मन को हटावे । शुभ कर्म करने में ढील करने पर मन पाप में रत होने लगता है ।

( ११७ )

पापकृत्ते पुरिसो कयिरा न सं कयिरा पुनपुनं ।

न तन्दि छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स सक्खो ॥ २ ॥

यदि पाप करे तो उसे फिर फिर न करे । उसमें रत न होवे । पाप का संचय दुःख का कारण होता है ।

( ११८ )

पुक्ककृत्ते पुरिसो कयिरा कयिरायेनं पुनपुनं ।

तन्दि छन्दं कयिराथ सुखो पुक्कस्स सक्खो ॥ ३ ॥

यदि शुभ कर्म करे, तो उसे फिर फिर करे । उसमें रत होने । पुण्य का संचय सुख का कारण होता है ।

( ११९ )

पापोपि पस्सति अहं व्याप पापं न पक्खति ।

यदा न पक्खति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥ ४ ॥

पापी को भी तब तक भला लगता है, जब तक पाप फल नहीं देता । जब पाप फल देता है, तब उसे बुरा लगता है ।

( १२० )

भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पप्पति ।

यदा च पप्पति भद्रं अथ भद्रो भद्राणि पस्सति ॥ ५ ॥

पुण्य करनेवाले को भी तब तक बुरा लगता है जब तक पुण्य फल नहीं देता । जब पुण्य फल देता है तब उसे अच्छा लगता है ।

( १२१ )

मावमब्बेथ पापस्स न मत्तं आगमिस्सति ।

उद्विम्बुनिपातेन उद्वुम्भोपि पूरति ।

पूरति बालो पापस्स थोक-थोकम्पि आचिन्नं ॥ ६ ॥

‘मेरे पास न आयेगा’ सोच पाप की अवहेलना न करे । बूँद बूँद पानी गिरने से बड़ा भर जाता है । मूर्ख आदमी थोड़ा थोड़ा पाप इकट्ठा कर लेता है ।

( १२२ )

मावमब्बेथ पुब्बस्स न मत्तं आगमिस्सति ।

उद्विम्बुनिपातेन उद्वुम्भोपि पूरति ।

पूरति धीरो पुब्बस्स थोक-थोकम्पि आचिन्नं ॥ ७ ॥

‘मेरे पास न आयेगा’ सोच पुण्य की अवहेलना न करे । बूँद बूँद पानी गिरने से बड़ा भर जाता है । धैर्यवान् थोड़ा थोड़ा करके पुण्य संकल्य कर लेता है ।

( १२३ )

वाणिजो ऽथ भयं मरणां अप्पसत्थो महत्तनो ।

विंसं जीवितुकामो ऽथ पापानि परिवज्जये ॥ ८ ॥

थोड़े काफिले और बहुत घनवाला व्यापारी भयशुक्त मार्ग को छोड़ देता है, अथवा जीने की इच्छावाला विष को छोड़ देता है, उसी प्रकार ( मनुष्य ) पापों को छोड़ दे ।

( १२४ )

पाणिन्दि चे वणो नास्स हरेय्य पाणिना विसं ।

भाब्बणां विसमम्बेति नत्थि पापं अकुब्बतो ॥ ६ ॥

यदि हाथ में धाव न हो, तो हाथ में विष लिया जा सकता है, क्योंकि धाव-रहित हाथ में विष नहीं चढ़ता । इसी प्रकार न करनेवाले को पाप नहीं लगता ।

( १२५ )

यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति

सुदस्स पोसस्स अमज्झणस्स ।

तमेव बालं पक्खेति पापं,

सुखुमो रजो पटिवात्तं व सित्तो ॥ १० ॥

जो शूद्र, निर्भल, दोष-रहित मनुष्य को दोषी ठहराता है, उस दोसी ठहरानेवाले मूल को ही पाप लगता है । जैसे हवा की विरा के विरुद्ध फेंकी हुई सूक्ष्म धूलि फेंकनेवाले पर ही पड़ती है ।

( १२६ )

राक्षमेके उप्पज्जन्ति पिरयं पापकम्मिनो ।

सग्गं सुगतिनो यन्धि, परिनिब्बन्ति अनासया ॥ ११ ॥

कोई संसार में उत्पन्न होते हैं । पापी नरक में जाते हैं । शुभकर्मी स्वर्ग में जाते हैं, और जो चित्त के मशों से रहित हैं वे निर्वाण को प्राप्त होते हैं ।

( १२७ )

न अमृतलिकखे न समुद्रमण्णे

न पण्डितानं विवरं पविस्स ।

न विज्जती सो जगतिप्पदेसो

यत्थदुट्ठितो मुक्खं धेय्य पापकम्मा ॥१२॥

न आकाश में, न समुद्र की तह में, न पर्वतों के गह्वर में—संसार में कहीं कोई ऐसी जगह नहीं है जहाँ रहकर आदमी पाप-कर्म से बच सके ।

( १२८ )

न अमृतलिकखे न समुद्रमण्णे

न पण्डितानं विवरं पविस्स ।

न विज्जती सो जगतिप्पदेसो

यत्थदुट्ठितं न प्पसहेय्य मच्छू ॥१३॥

न आकाश में, न समुद्र की तह में, न पर्वतों के गह्वर में—संसार में कहीं कोई ऐसी जगह नहीं जहाँ रहनेवाला मनुष्य से बच सके ।

## १०—दण्डवन्मो

( १२६ )

सख्ये तसन्ति दण्डस्स सख्ये भावन्ति मच्छुनो ।

अत्थानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ १ ॥

सभी दण्ड से डरते हैं, सभी को मृत्यु से भय लगता है । इसलिए सभी को अपने जैसा समझ न किसी को मारे, न मरवावे ।

( १३० )

सख्ये तसन्ति दण्डस्स सख्येस्स जीवितं पियं ।

अत्थानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ २ ॥

सभी दण्ड से डरते हैं, सभी को जीवन प्रिय है । इसलिए सभी को अपने जैसा समझ न किसी को मारे, न मरवावे ।

( १३१ )

सुखकामानि भूतानि वो दण्डेन न विहिंसति ।

अत्थानो सुखमेसानो पेच सो न लभते सुखं ॥ ३ ॥

सुख की चाह से वो सुख चाहनेवाले प्राणियों को दण्ड से मारता है, वह भरकर सुख नहीं पाता है ।

( १३२ )

सुखकामानि भूतानि वो दण्डेन न हिंसति ।

अत्थानो सुखमेसानो पेच सो लभते सुखं ॥ ४ ॥

सुख की चाह से जो सुख चाहनेवाले प्राणियों को झूठे से नहीं मारता, वह मरकर सुख पाता है ।

( १३३ )

मा वोच फलसं कज्जि पुत्ता पटिचदेय्यु तं ।

हुक्खा हि सारम्मकया पटिदग्धा फुसेय्यु तं ॥ ५ ॥

किसी से कठोर वचन मत बोलो, दूसरे तुमसे कठोर वचन बोलेंगे ।  
तुर्वचन दुःखदायी होते हैं । बोलने से बदले में तुम दण्ड पाओगे ।

( १३४ )

स चे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा ।

एस पत्तोसि निब्बाणं सारम्भो ते न विज्जति ॥ ६ ॥

यदि पीटे जाने पर ( दूटे ) कंस की तरह अपने आपको निःशब्द रखो, तो तुमने निर्वाण पा लिया, तुम्हारे लिए कलह नहीं रहा ।

( १३५ )

यथा दग्धेन गोपालो गावो पाप्पेति गोचरं ।

एवं जरा च मरुचू च आयुं पाप्पेन्ति पाणिनं ॥ ७ ॥

जैसे ग्वाला गावों को बड़बड़े से चरागाह में ले जाता है, वैसे ही  
हुदापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को ले जाते हैं ।

( १३६ )

अथ पापानि कम्म्यानि करं वालो न मुशक्कति ।

सेहि कम्मेहि तुम्मेधो अग्निदग्धोव तप्पति ॥ ८ ॥

पाप-कर्म करता हुआ मूर्ख आदमी नहीं बुझता । पीछे तुम्हीं  
अपने उन्हीं कर्मों के कारण आग से जलते हुए की तरह तपता है ।

( १३५ )

यो दण्डेन अदण्डेषु अप्पदुट्ठेषु दुस्सति ।  
दसअमब्बतरं ठानं सिप्पमेव निगच्छति ॥ ६ ॥

( १३८ )

वेदनं पक्खं जानिं सरीरस्स ज्ञ मेदं ।  
गरुहं वापि आवाधं चित्तक्खेपं व पाप्पणे ॥ १० ॥

( १३६ )

राजतो वा तपस्सर्गं अकमक्खानं व दाकणं ।  
परिक्खयं व वातीनं भोगानं व पमज्जुरं ॥ ११ ॥

( १४० )

अयक्ख अगारानि अग्गी उहति पावको ।  
कायस्स भेदा दुप्पब्बो निरयं सोपपज्जति ॥ १२ ॥

जो दण्डरहितो को दण्ड से पीड़ित करता है या दोषरहितो को दोष ( लगाता है ), उसे इन दस बातों में से कोई एक बात शीघ्र ही होती है—( १ ) तीव्र वेदना, ( २ ) हानि, ( ३ ) अंग-भंग, ( ४ ) मारी बीमारी, ( ५ ) पागलपन, ( ६ ) राजदण्ड ( ७ ) कड़ी निन्दा, ( ८ ) रिश्तेदारों का विनाश, ( ९ ) भोगों का क्षय, ( १० ) आग उसके घर को जला देती है । शरीर छूटने पर वह दुष्पथ नरक में उतरता होता है ।

( १४१ )

न मग्गचरिणा न जटा न पक्का  
नानासका यथिज्जलसायिका वा ।

रज्जोवज्जलं तक्कुटिकप्पधानं  
सोधेन्ति मच्छं अवितिरणकक्कं ॥ १३ ॥



न नंगे रहने से, न जटा ( चारण करने ) से, न कीचड़ (लपेटने) से, न उपवास करने से, न कड़ी मृमि पर सोने से, न धूल लपेटने से, न उकड़ूँ बैठने से ही उस आदमी की शुद्धि होती है, जिसकी आकां-  
क्षायें बाकी हैं ।

( १४२ )

अलङ्कृतो चेपि सप्तं चरेय्य

सत्तो दम्तो नियतो ब्रह्मचारी ।

सङ्खेसु भूतेसु निधाय दण्डं

सो ब्राह्मणो सोसमणो स भिक्खु ॥१४॥

अलङ्कृत होते हुये भी यदि उसका आचार्य सभ्य है, यदि वह शांत है, यदि वह दान्त है, यदि वह नियत ब्रह्मचारी है और यदि उसने सभी प्राणियों के प्रति दण्ड स्थापन दिया है, तो वही ब्राह्मण है, वही भ्रमण है, वही भिक्खु है ।

( १४३ )

द्विरीनिसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मिं विज्जति ।

यो निग्घं अप्पबोधसि अस्सो भद्दो कसामिद ॥१५॥

लोक में कुछ आदमी ऐसे होते हैं, जिन्हें उनकी अपनी लम्बा निषिद्ध-कर्म करने से रोक होती है । जिस प्रकार उत्तम घोड़ा चाबुक को नहीं सह सकता, उसी प्रकार वह निग्घा को नहीं सह सकते ।

( १४४ )

अस्सो यथा भद्दो कसामिविद्धो

आत्तापित्तो संवेगिनो अवाय ।

सङ्गाय सीलेन च विरियेन च

समाधिना धम्मविनिष्खयेन च ।

सम्पन्नविष्णुआचरणा पतिस्सत्ता

पहस्सथ, दुक्खमिदं अनण्णकं ॥१६॥

चाहुक खाये उत्तम घोड़े की तरह प्रयत्न-शील और संवेग-युक्त बनो । श्रद्धा, शील, धीर्य, समाधि तथा धर्म-विनिश्चय से युक्त हो विद्यावान् और आचारवान् बन स्मृति की रख, उस महान् दुःख का अन्त करो ।

( १४५ )

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका

उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।

वाहं नमयन्ति तच्छक्का

अन्तानं दमयन्ति सुच्चता ॥१७॥

( पानी ) ले जाने वाले पानी ले जाते हैं, वायु बनानेवाले वायु नवाते हैं, बड़ा लकड़ी नवाते हैं और सुनती ( जन ) अपना दमन करते हैं ।

## ११—जरावग्गो

( १४६ )

कोत्तु हासो किमानन्दो निरुच्चं पञ्जलिते सति ।

अन्धकारेण ओनद्धा पदीपं न गवेस्सय ॥ १ ॥

सब कुछ नल रहा है, तुम्हें हँसी और आनन्द सूझता है ! अन्ध-  
कार से घिरे रहकर ( भी ) तुम प्रदीप को नहीं खोजते !

( १४७ )

यस्स चित्तकतं विम्वं अरुकायं समुत्सितं ।

आतुरं बहुसङ्कप्पं यस्स नत्थि धुवं ठित्ति ॥ २ ॥

इस विविध शरीर को देखो, जो अर्थों से युक्त है, जो फूला है,  
जो रोगी है, जो नाना प्रकार के संकल्पों से युक्त है, जिसकी स्थिति  
निश्चित नहीं है ।

( १४८ )

परिविद्यणमिदं रूपं रोगनिबूढं पभङ्गुरं ।

मिज्जती धुत्तिसम्बेहो मरणाण्णं हि जीविणं ॥ ३ ॥

यह शरीर जीर्ण शीर्ण है, रोग का घर है, भंगुर है, सककर भग्न  
होनेवाला है, सभी जीवितों को मरना होता है ।

( १४९ )

वानिभानि अपत्यानि अलाबूतेष सारदे ।

कापोसकानि अट्ठीनि तानि विस्वान का रत्ति ॥ ४ ॥

यह जो शरद्-काल की सी अथवा लौकी की तरह वा कबूतरों की सफेदी की सी सफेद हड्डियाँ हैं, उन्हें देखकर ( शरीर में ) किसी की क्या रति होगी ?

( १५० )

अट्टीनं नगरं कृतं मंसलोहितलेपनं ।

यत्तु अरा च भञ्ज्य च मानो मन्त्रो च ओहितो ॥ ५ ॥

हड्डियों का नगर बनाया गया है, मांस और रक्त से लेपा गया है, उसमें बुढ़ापा, मृत्यु, अभिमान और आह छिपे हैं ।

( १५१ )

जीरन्ति वे राजरथा सुविज्ञा

अथो सरीरम्पि जरं उपेति ।

सप्तं च घम्भो न जरं उपेति

सन्तो ह्ये सन्नि पवेदयन्ति ॥ ६ ॥

सुविज्ञित राजरथ पुराने पड़ जाते हैं, शरीर अरा को प्राप्त हो जाता है; किन्तु बुढ़ों का धर्म अरा को नहीं प्राप्त होता । सन्त-जन सत्पुरुषों से ऐसा कहते हैं ।

( १५२ )

अप्पस्सुताथं पुरिसो वलिवहोष जीरति ।

मंसानि तस्स वद्धन्ति पब्बन्ना तस्स न वद्धति ॥ ७ ॥

असानी पुरुष बेल की तरह बढ़ता जाता है । उसका मांस बढ़ता है, प्रका नहीं ।

( १५३ )

अनेकजातिसंसारं सम्भाविस्सं अनिज्जिस्सं ।

गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ॥ ८ ॥

( १५४ )

गहकारक । विट्ठोसि पुन गेहं न काहसि ।

सन्ना ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्घितं ।

विसङ्कारगतं चित्तं तयहानं स्वयमवमत्ता ॥ ६ ॥

गहकारक को छूँछते हुए मैं अनेक जन्मों तक लगातार संसार में दौड़ता रहा । बार बार जन्म लेना दुःख है । गहकारक । तू दिखाई दे गया । अब फिर घर नहीं बना सकेगा । तेरी सब कड़ियों टूट गईं । घर का शिलार बिखर गया । चित्त संस्कार-रहित हो गया । तुम्हारा का क्षय हो गया ।

( १५५ )

अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योज्जने धनं ।

जिरणकोच्चाव कायन्ति स्त्रीणमच्छेध पल्लवे ॥ १० ॥

जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया, जिन्होंने जवानी में धन नहीं कमाया, वह बिना मछली के तालाब में बड़े कौंच पत्ती की तरह ध्यान लगाते हैं ।

( १५६ )

अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योज्जये धनं ।

सेवन्ति चापातिस्त्रीणाव पुराणानि अतुत्थुनं ॥ ११ ॥

जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया, जिन्होंने जवानी में धन नहीं कमाया, वह बड़े मनुष्य की तरह पुरानी बातों पर पड़ताते हुए पड़े रहते हैं ।

## १२—अतवमो

( १५७ )

अत्तानं चे पियं जज्झा रक्खेय्य तं सुरक्खितं ।

त्तिण्णमब्बतरं यामं पटिजग्गेय्य पण्डितो ॥ १ ॥

यदि अपने को ध्यान करता हो, तो अपने को संभाले रखे ।  
पण्डित ( जन ) रात के तीन पहरो में से एक पहर जागता रहे ।

( १५८ )

अत्तानं एव पठमं पटिरूपे निवेसये ।

अथज्जमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो ॥ २ ॥

जो उचित है उसे यदि पहले अपने करके पीछे दूसरे को उपदेश  
करे, तो पण्डित ( जन ) को क्लेश न हो ।

( १५९ )

अत्तानञ्च तथा कयिरा यथज्जमनुसासति ।

सुदन्तो वतं दम्भेथ अत्ता हि किर दुहमो ॥ ३ ॥

यदि पहले स्वयं वैसा करे, जैसा औरों को उपदेश देता है, तो  
अपने को दमन कर सकनेवाला दूसरो का भी दमन कर सकता है ।  
नस्तुतः अपने को दमन करना ही कठिन है ।

( १६० )

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिद्धा ।

अत्तनाथ सुदन्तेन नाथं लभति दुस्समं ॥ ४ ॥

आदमी अपना स्वामी आप है, दूसरा कौन स्वामी हो सकता है ?  
अपने को दमन करने वाला दुर्लभ स्वामित्व को पाता है ।

( १६१ )

अत्तनाय कत्तं पापं अत्तजं अत्तसम्भवं ।

अभिमम्यति दुम्भेधं वजिरं वस्मभयं मयि ॥ ५ ॥

अपने से पैदा हुआ, अपने से उत्पन्न, अपने किया गया पाप  
दुर्बुद्धि आदमी को वैसे ही पीड़ित करता है जैसे पाश्यामय-मणि को  
पञ्ज ।

( १६२ )

यस्सरुचन्तुस्सीत्थं मालुवा सालमिबोत्तं ।

करोति सो तथत्तानं ययानं इच्छती दिसो ॥ ६ ॥

यास वृक्ष पर फैली मालुवा लता की भाँति जिसका दुराचार फैला  
है, वह अपने लिये बैसा ही करता है जैसा उसके रज्जु चाहते हैं ।

( १६३ )

मुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च ।

यं वे हितञ्च साधुञ्च तं वे परमदुक्करं ॥ ७ ॥

धुरे और अपने लिए अहितकर-काम्यों का करना आसान है;  
लेकिन शुभ और हितकर काम्यों का करना बहुत कठिन है ।

( १६४ )

यो सासनं अरहत्तं अरियानं धम्मजीविनं ।

पटिककोसति दुम्भेधो विट्ठिं निस्साय पापिकं ।

फत्तानि कट्टकस्सेव अत्तइत्थाय फुल्लति ॥ ८ ॥

भ्रान्त-सिद्धांत का अनुयायी होने के कारण वो दुर्बुद्धि धर्मजीवी  
आर्य अहंता के शासन की निन्दा करता है वह बोंस के फल की भाँति  
आत्म-हत्या के ही लिए फलता है ।

( १६५ )

अक्षयनाम् कर्तं पापं अक्षयना संकलित्सति ।

अक्षयना अक्षयं पापं अक्षयनाम् विसृज्यति ॥

सुखि असुखि पञ्चवर्षं नश्यो अक्षयं विसोषये ॥ ६ ॥

अपना किया पाप अपने को मलिन करता है, अपना न किया पाप अपने को शुद्ध करता है। प्रत्येक आदमी की शुद्धि-अशुद्धि अलग-अलग है। एक आदमी दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता।

( १६६ )

अक्षयस्थं परस्थेन बहुनापि न हापये ।

अक्षयस्थमभिक्षाय सक्षयप्लुतो सिया ॥ १० ॥

परार्थ के लिये आत्मार्थ को बहुत व्यादाह भी न छोड़े। आत्मार्थ को जानकर सक्षय में लगे।





## १३—लोकवर्गो

( १६७ )

हीनं धम्मं न सेवेय्य, प्रमादेन न संवसे ।

मिच्छाविट्ठं ■ सेवेय्यं न सिया लोक-पट्टनो ॥ १ ॥

पाप-कर्म न करे । प्रमाद से न रहे । झूठी वारणा न रखे और  
आवागमन को बढ़ानेवाला न बने ।

( १६८ )

उत्तिष्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे ।

धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परमिह च ॥ २ ॥

उठे, आलसी न बने और सुचरित-धर्म का आचरण करे । धर्म-  
चारी इस लोक और परलोक में सुख से रहता है ।

( १६९ )

धम्मं चरे सुचरितं न तं दुक्कचरितं चरे ।

धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परमिह च ॥ ३ ॥

सुचरित-धर्म का आचरण करे, दुश्चरित-कर्म न करे । धर्मचारी  
इस लोक और परलोक में सुख से रहता है ।

( १७० )

यथा बुब्बुलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं ।

एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न प्रस्यति ॥ ४ ॥

आदमी जैसे जैसे बुलबुले को देखता है, जैसे (मरु-) मरीचिका को देखता है, वैसे ही जो (पुरुष), लोक को देखता है, उसकी ओर यमराज (आँख उठाकर) नहीं देखता ।

( १७१ )

एथ पस्सथिमं लोकं चित्तां राजरशूपमं ।

यत्थ धाला विसीदन्ति, नत्थि सङ्को विजानत्तं ॥ ५ ॥

आओ, विचित्र राजरस के समान इस लोक को देखो, जिसमें मूढ़ जन आसक्त होते हैं; शानी आसक्त नहीं होते ।

( १७२ )

यो च पुब्बे पमज्झित्वा पच्छा सो नप्पमक्खति ।

सोमं लोकं पभासेति अन्ना मुत्तोव चन्दिमा ॥ ६ ॥

जो पहले भूल करके (भी) फिर भूल नहीं करता वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है ।

( १७३ )

यस्स पापं कत्तं कम्मं कुसलेन पिणीयति ।

सोमं लोकं पभासेति अन्ना मुत्तोव चन्दिमा ॥ ७ ॥

जो अपने किये पाप-कर्म को कुशल कर्म से ढक देता है, वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है ।

( १७४ )

अन्धभूतो अर्धं लोको तनुकेत्य विपस्सति ।

सङ्कुत्तो जालमुत्तोव अप्पो सग्गाय गच्छति ॥ ८ ॥

यह संसार अन्धा है, थोड़े-थोड़े देखते हैं । जाल से मुक्त पक्षियों की तरह थोड़े ही लोग स्वर्ग को जाते हैं ।

( १७५ )

हंसादिक्षपणे यन्ति आकासे यन्ति इन्द्रिया ।

नीयन्ति धीरा लोकम्हा जेत्या मारं सवाहिर्णि ॥ ६ ॥

हंस आकाश में उड़ते हैं, ऋद्धि-बल-प्राप्त आकाश-मार्ग से जाते हैं और सेना-सहित मार को जीत लेने पर धीर-आन लोक से ( निर्वाण को ) ले जाये जाते हैं ।

( १७६ )

एकं धम्मं अतीतस्स मुसावाप्तिस्स अन्तुनो ।

वित्तिण्यापरलोकस्स नत्थि पापं अकारिस्स ॥ ७ ॥

जो एक ( द्रव्य ) नियम को लाँच गया है, जो झूठ बोलनेवाला है और जिसको परलोक का ख्याल नहीं, वह आदमी किसी भी पाप-कर्म को कर सकता है ।

( १७७ )

न [ वे ] कदरिया देवलोकं वजन्ति

बाला इवे नप्पसंसन्ति दानं ।

धीरो च दानं अनुमोदमानो

तेनेव सो होति मुखी परत्थ ॥ ११ ॥

कञ्जल लोग देवलोक नहीं जाते, मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते; धैर्यवान् आदमी दान का अनुमोदन कर लती ( कर्म ) से परलोक में मुखी होता है ।

( १७८ )

पथव्वा एकरज्जेन सत्तमस्स गमनेन वा ।

सज्जलोकाधिपस्येन सोतापत्तिफलं वरं ॥ १२ ॥

अकेले पृथ्वी का राजा होने से, स्वर्ग जाने से, सभी लोकों का अधिपति होने से भी अधिक भेद्य है सोतापत्ति-फल ।

## १४—बुद्धवग्गो

( १७६ )

यस्स जितं नावजीयति

जितमस्स नो याति कोचि लोके ।

तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ? ॥ १ ॥

जिसकी जीत हार में परिवर्त नहीं हो सकती, जिसकी जीत को लोक में कोई नहीं पहुँचता, उस अपद अनन्त-ज्ञानी बुद्ध को तुम किस उपाय से अस्थिर कर सकोगे ?

( १८० )

यस्स जासिनी विससिका

तथा नत्थि कुदिञ्चि नेत्तवे ।

तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ? ॥ २ ॥

जिसे जाल फैलानेवाली विषयरूपी दुष्का लोक में कहीं भी नहीं हो जा सकती, उस अपद अनन्त-ज्ञानी बुद्ध को तुम किस उपाय से अस्थिर कर सकोगे ?

( १८१ )

ये ऋणपसुता धीरा नेक्खम्मूपसमे रत्ता ।

देवापि तेसं पिहयन्ति सन्धुद्धानं सत्तीमतं ॥ ५ ॥

जो धीर हैं, ध्यान में रत हैं, त्याग और उपशमन में लगे हैं, उन स्मृतिमान् बुद्धों की देवता भी प्रशंसा करते हैं ।

( १८२ )

किच्छो मनुत्सपटिलाभो किच्छं मच्चानं जीवितं ।

किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥ ४ ॥

मनुष्य-योनि मुश्किल से मिलती है, मनुष्य-जीवन मुश्किल से बना रहता है, उद्धर्म का सुनना मुश्किल से मिलता है और बुद्धों का जन्म मुश्किल से होता है ।

( १८३ )

सज्जपापस्स अकट्ठां कुसलस्स उपसम्पदा ।

स-विश्वपरियोद्धानं, एतं बुद्धानं सासनं ॥ ५ ॥

सब पापों का न करना, शुभ कर्मों का करना, विश्व को परिशुद्ध रखना यही है बुद्धों की शिक्षा ।

( १८४ )

जान्ती परमं तपो तित्तिक्खा,

निष्कार्या परमं वदन्ति बुद्धा ।

नहि पण्डजितो पत्त्यधात्ती,

समयो होति परं विहेठधम्तो ॥ ६ ॥

शान्ति और सहन-शीलता परं तप है, बुद्ध निर्वाण को परं श्रेष्ठ कहलाते हैं । दूसरे का धात करनेवाला प्रमत्त नहीं होता । दूसरे को पीका न देने वाला ही धम्मवा होता है ।

( १८५ )

अनूपधादो अनूपधातो पाप्पिमोक्खे च संघरो ।

अत्तकम्भुता च अत्तस्मिं पम्भक्य सयनासनं ॥

अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धानं सासनं ॥ ७ ॥

किसी की निन्दा ■ करना, किसी का घात न करना, भिक्षु-निषण्णों का पालन करना, उचित भाषा में प्रवचन करना, एकान्त में सोना-बैठना, चित्त को योग-अभ्यास में लगाना—यही है मुद्रों की शिक्षा ।

( १८६ )

न कदाप्यावस्तेन तित्ति कामेसु बिण्वति ।

अल्पसंख्या दुःखता कामा इति विख्याय पतिवतो ॥ ८ ॥

( १८७ )

अपि दिग्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति ।

तद्वक्ष्यरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको ॥ ९ ॥

कार्पायणों की वर्षा होने से भी मनुष्य की कामनाओं की तृप्ति नहीं होती । सभी काम-भोग अल्प-स्वादवाले हैं, दुःखद हैं; यह जानकर परित्त ( जन ) दिव्य काम-भोगों में भी रति नहीं करता और सम्बुद्ध का शिष्य तृष्णा के नाश करने में लग्न रहता है ।

( १८८ )

बहुं वे सरणं यन्ति पञ्चतानि वनानि च ।

आरामरुन्धवेत्यानि मनुस्सा भयतस्सिवा ॥ १० ॥

( १८९ )

नेतं श्री सरणं क्षेमं नेतं सरणमुत्तमं ।

नेतं सरणमागम्य सन्नदुक्खा पमुञ्चति ॥ ११ ॥

मय के मारे मनुष्य पर्वत, घन, उद्यान, वृक्ष, चैत्य आदि बहुत चीजों की शरण ग्रहण करते हैं । लेकिन यह शरण ग्रहण करना कल्याण-कर नहीं, उत्तम नहीं । इन शरणों को ग्रहण करके कोई मारे के मारे दुःख से मुक्त नहीं हो सकता ।

( १६० )

ओ च बुद्धञ्च धम्मञ्च सङ्गञ्च सरणं गतो ।

अचारि अरियसङ्घानि सम्मप्यब्बाय पस्सति ॥१२॥

( २६१ )

दुक्खं दुक्खसमुत्पादं दुक्खस्स च अशिव्कमं ।

अरियञ्चदृष्टिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥१३॥

( १६२ )

एतं ओ सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं ।

एतं सरणमाशम्भ सच्चदुक्खा पमुक्खति ॥१४॥

जो बुद्ध, धर्म, संघ की शरण ग्रहण करता है, जो चारों आर्य्य-सत्यो को मझी प्रकार प्रज्ञा से देखता है—(१) दुःख, (२) दुःख की उत्पत्ति, (३) दुःख का विनाश, (४) दुःख का उपशमन करनेवाला आर्य्य-अष्टांगिक-मार्ग—उसका यह शरण ग्रहण करना कल्याण-कर है, वही शरण उत्तम है। इस शरण को ग्रहण करके ( मनुष्य ) सब दुःखों से मुक्त होता है।

( १६३ )

दुक्खलभो पुरिसाज्जम्भो न सोसन्नत्थ जायति ।

यदयं सो जायती धीरो तं कुलं सुखमेवति ॥१५॥

जोष्ठ पुरुष का जन्म दुर्लभ है, वह सब जगह पैदा नहीं होता। जिस कुल में वह धीर पैदा होता है, उस कुल में सुख की वृद्धि होती है।

( १६४ )

सुखो बुद्धानं तप्पादो सुखा सज्जम्भवेसना ।

सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो ॥१६॥

बुद्धों का पैदा होना सुल-कर है, उद्गम का उपदेश सुल-कर है, संघ में एकता का होना सुल-कर है, और सुल-कर है मिलकर तप करना ।

( १६५ )

पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके ।  
पपञ्चसमत्तिकम्मे तिक्खसोकपरिद्वे ॥१७॥

( १६६ )

ते साविसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये ।  
न सक्का पुब्बं संखातुं इमेत्तमिति केनपि ॥१८॥

पूजनीय बुद्धों अथवा उनके शिष्यों—जो ( संसार के ) प्रपञ्च से छूट गये हैं, जो शोक भय को पार कर गये हैं—की पूजा के, या उन जैसे मुक्त और निर्भय ( पुरुषों ) की पूजा के धुस्य के परिमाण को “इतना है” करके कोई नहीं बता सकता ।



## १५—सुखवन्धो

( १६७ )

सुसुखं वत ! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।

वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥ १ ॥

बैर करनेवाले मनुष्यों में अवैरी बने रहकर हम सुख पूर्वक जीते हैं । वैरी मनुष्यों में हम अवैरी बनकर विचरते हैं ।

( १६८ )

सुसुखं वत ! जीवाम आतुरेसु अनातुरा ।

आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥ २ ॥

रोगी मनुष्यों में रोग-रहित होकर हम सुख पूर्वक जीते हैं । रोगी मनुष्यों में हम स्वस्थ बनकर विचरते हैं ।

( १६९ )

सुसुखं वत ! जीवाम उस्सुकेसु अनुस्सुका ।

उस्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका ॥ ३ ॥

आलस्य मनुष्यों में अनालस्य बने रहकर हम सुख पूर्वक जीते हैं । आलस्य मनुष्यों में हम अनालस्य बनकर विचरते हैं ।

( २०० )

सुसुखं वत ! जीवाम पेत्तं नो नत्थि किञ्चन ।

पीतिमक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा ॥ ४ ॥

किन हम लोगों के पास कुछ नहीं, अहो ! हम सुख पूर्वक जीते हैं ।  
हम आभास्वर देवताओं की तरह प्रीति का ही भोगन करके रहेंगे ।

( २०१ )

जयं वैरं पसवति दुःखं सेति पराजितो ।

उपसन्तो सुखं सेति हिप्त्वा जयपराजयं ॥ ५ ॥

जय से वैर पैदा होता है, पराजित दुःखी रहता है । जय-पराजय  
दोनों को छोड़कर शान्त ( -अनुभूय ) सुख पूर्वक होता है ।

( २०२ )

नस्थि रागसमो अग्निः, नस्थि दोषसमो कलिः ।

नस्थि सन्धिसमा दुःखा नस्थि सन्तिपरं सुखं ॥ ६ ॥

राग के समान अग्नि नहीं, दोष के समान मल नहीं । भौतिक-सम्बन्धी  
( के सम्प्रदाय ) के समान दुःख नहीं । शान्ति से बढ़कर सुख नहीं ।

( २०३ )

जिघृच्छा परमा रोगा, सङ्कारा परमा दुःखा ।

एतं वात्वा यथाभूतं निष्कारणं परमं सुखं ॥ ७ ॥

भूल सबसे बड़ा रोग है, संस्कार परम दुःख है, इस यथार्थ (वात)  
जाननेवाले को निर्वाण परम सुख है ।

( २०४ )

आरोग्य परम लाभः सन्तुष्टीपरमं धनं ।

विश्वासपरमा वाती निष्कारणं परमं सुखं ॥ ८ ॥

जीवीय रहना परम लाभ है, सन्तुष्ट रहना परम धन, विश्वास सबसे  
बड़ा धन है, निर्वाण सबसे बड़ा सुख ।

( २०५ )

पवित्रेकरसं पीत्वा रसं उपसमस्त च ।

निहरो होति निष्पापो धम्मपीतिरसं पिब ॥ ६ ॥

एकान्त ( -वास ) तथा शान्ति के रस को पान कर आदमी निहरो होता है और धर्म के प्रेम रस को पान कर निष्पाप ।

( २०६ )

साधु वस्सनमरिवानं सन्निवासो सदा सुखो ।

अदस्सनेन बालानं निवचमेव सुखी सिया ॥ १० ॥

सत्पुरुषों का दर्शन करना अच्छा है, सत्पुरुषों की संगति सदा सुखकर है; और मूर्खों का दर्शन न होने से ही ( आदमी ) सदा सुखी रहता है ।

( २०७ )

बालसंगतचारी हि दीधमद्वयानं सोचति ।

दुक्खो बालेहि संवासो अमिच्छेनेव सम्बदा ॥

धीरो च सुखसंवासो आतीनं 'व समागमो ॥ ११ ॥

मूर्खों की संगति करनेवाला दीर्घ काल तक शोक करता है, मूर्खों की संगति शत्रु की संगति की तरह सदा दुःखदायी होती है; और धैर्यवानों की संगति बन्धुओं की संगति की तरह सुखदायी होती है ।

( २०८ )

तस्मा हि धीरं च पक्कमञ्च बहु-सुखं च

धीरप्पसीलं वतक्कन्तमरियं ।

तं तादिसं सत्पुरिसं सुमेधं

अजेय नक्खत्तपथं'व चन्दिमा ॥ १२ ॥

इसलिए धीर, प्राज्ञ, बहुभूत, उद्योगी, नती आर्य तथा सुख सत्पुरुष की संगति करे; जैसे चन्द्रमा नक्षत्र पथ का (सेवन करता है) ।

## १६—पियवम्भो

( २०६ )

अयोगे युल्लमत्तानं योगस्मिन् च अयोजयं ।

अर्थं हित्वा पियग्गाही पिहेत'त्तानुयोगिर्न ॥ १ ॥

अपने को उचित कार्य में न लगा, अनुचित में लगा, सदर्थ को छोड़कर प्रिय के पीछे भागनेवाले को आत्मानुयोगी की स्पृहा करनी होती है ।

( २१० )

मा पियेहि समागच्छि अप्पियेहि कुदाचनं ।

पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ॥ २ ॥

प्रियों का साथ करो और अप्रियों का साथ कभी न करो । प्रियों का अदर्शन दुःखद होता है और अप्रियों का दर्शन ।

( २११ )

तस्मा पियं न कयिराथ पिथापायो हि पापको ।

गम्या तेसं न विज्झन्ति थेसं नत्थि पियाप्पियं ॥ ३ ॥

इसलिए ( किसी को ) प्रिय न बनावे, प्रिय का नाश हुआ ( लगता ) है; उनके ( दिल में ) गोंठ नहीं होती जिनके प्रिय-अप्रिय नहीं होते ।

( २१२ )

पियतो जायते सोको पियतो जायते मयं ।

पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥ ४ ॥

प्रिय से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय । जो प्रिय से मुक्त है, उसे शोक नहीं, भय कहाँ से होगा ?

( २१३ )

प्रेमतो जायते सोको प्रेमतो जायते भयं ।

प्रेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥ ५ ॥

प्रेम से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय । जो प्रेम से मुक्त है, उसे शोक नहीं, भय कहाँ से होगा ?

( २१४ )

रतिया जायते सोको रतिया जायते भयं ।

रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥ ६ ॥

राग से शोक उत्पन्न होता है, राग से भय । जो राग से मुक्त है, उसे शोक नहीं, भय कहाँ से होगा ?

( २१५ )

कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं ।

कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥ ७ ॥

काम ( भोग ) से शोक उत्पन्न होता है, काम से भय । जो काम से मुक्त है, उसे शोक नहीं, भय कहाँ से होगा ?

( २१६ )

तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं ।

तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥ ८ ॥

तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय । जो तृष्णा से मुक्त है, उसे शोक नहीं, भय कहाँ से होगा ?

( २१७ )

शीलदस्सनसम्पन्ना धम्मट्ठं सञ्चावादिन् ।

असतो कम्म कुब्बान् तं जनो कुक्कते पियं ॥ ९ ॥

जो शीलवान् है, जो विद्वान् है, जो धर्म में स्थित है, जो सत्यवादी है, जो अपने काम को करनेवाला है, ऐसे (आदमी) को लोग प्यार करते हैं ।

( २१८ )

अण्डजातो अनमस्साते मज्झा च कुटो सिया ।

कामेसु च अप्पटिबद्धचित्तो उद्ध'सोती'ति वुचति ॥ १० ॥

बिसको निर्वाण की अभिलाषा है, जिसने उसे मन से स्पर्श किया है, जिसका चित्त काम-भोगों में संलग्न नहीं है, वह ऊर्ध्व स्त्रोता कहलाता है ।

( २१९ )

चिरप्पवासिं पुरिसं दूरतो सोत्थिमागतं ।

आतिमिप्ता सुहृत्ता च अभिनन्दन्ति आगतं ॥ ११ ॥

( २२० )

तथेव कतपुब्बन्धि अस्मा लोका परं कतं ।

पुब्बानि पतिगणहन्ति पियं आतीव आगतं ॥ १२ ॥

चिरकाल तक विदेश में रहकर सकुशल लौटने पर शक्ति, बन्धु और मित्र उसका अभिनन्दन करते हैं, इसी प्रकार पुण्य (-कर्मा) पुण्य के इस लोक से परलोक जानै पर, उसके पुण्य उसका स्वागत करते हैं, जैसे आति-बन्धु अपने मित्र व्यक्ति का ।

## १७—क्रोधवग्गो

( २२१ )

क्रोधं जहे विप्वजहेय्य मानं

सज्ज्योज्जनं सज्जमतिक्रमेय्य ।

तं नामरूपस्मिं असज्जमानं

अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खम् ॥ १ ॥

क्रोध को छोड़ दे, अभिमान को छोड़ दे, सब बन्धनों को पार कर  
जाय—ऐसे आदमी को जो नाम-रूप में आसक्त न हो, जो परिग्रह-रहित  
हो दुःख नहीं सताते ।

( २२२ )

यो वे उप्पत्तितं क्रोधं रथं भस्सं च धारये ।

समहं सारिथं अमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो ॥ २ ॥

जो आये क्रोध को उसी तरह रोक ले, जैसे कोई मार्ग-ग्रह रथ को;  
उस आदमी को मैं ( असली ) सारथी कहता हूँ, दूसरे लोग तो केवल  
रस्सी पकड़ने वाले हैं ।

( २२३ )

अकक्रोधेन जिने क्रोधं असाधुं साधुना जिने ।

जिने कदरियं दानेन सज्ज्येन अलिकधादिनं ॥ ३ ॥

क्रोध को अक्रोध से, बुराई को भलाई से, कंजुस-पन को दान से  
और झूठ को सत्य से जीते ।

( २२४ )

सकृच्च भरो न कुलमेत्य, वज्रा' प्पस्मिन्नि वाचिसो ।

पतेहि सीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥ ४ ॥

सत्य बोले, कोप न करे, माँगने पर थोड़ा रहते भी दे । इन तीन बातों के करने से आदमी देवताओं के पास जाता है ।

( २२५ )

अहिंसका ये मुनयो निरुच्चं कायेन संयुता ।

ते यन्ति अकचुतं ठानं यत्थ गत्वा न सोचरे ॥ ५ ॥

जो मुनि ( जन ) अहिंसक हैं, जो शरीर से सदा संयत रहते हैं वे उस पतन-रहित स्थान को प्राप्त होते हैं, जहाँ जाने पर शोक नहीं होता ।

( २२६ )

सदा जागरमागानं अहोरत्नानुसिन्धिनं ।

निष्कार्यं अधिमुत्तानं अर्थं गच्छन्ति आसव ॥ ६ ॥

जो सदा जागरूक रहते, जो रात-दिन सीखने में लगे रहते हैं, जो निर्वाह-मांसि की ओर प्रयत्नशील हैं, उनके आसव अस्त हो जाते हैं ।

( २२७ )

पोराणमेसं अतुल ! नेसं अकजतनामिव ।

निन्दन्ति सुण्डीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं ।

मितभाणिनन्ति नन्दन्ति

नत्थि लोके अनिन्दितो ॥ ७ ॥

हे अतुल ! वह पुरानी बात है, वह आज की नहीं । चुप बैठे रहनेवाले को भी निन्दा होती है, बहुत बोलनेवाले की भी निन्दा होती है, कम बोलनेवाले की भी निन्दा होती है, दुनिया में ऐसा कोई नहीं जिसकी निन्दा न हो ।



( २२८ )

न चाहु न च भविस्सिति न चेतर्हि विज्जति ।

एकन्तं निन्दितो पोसो एकन्तं वा पसंसितो ॥ ८ ॥

ऐसा आदमी जिसकी या तो विस्फुल्ल प्रशंसा ही प्रशंसा होती हो या निन्दा ही निन्दा; न हुआ, न है, न होगा ।

( २२९ )

सक्ये विस्सू पसंसन्ति अणुषिक् सुवे सुवे ।

अच्छिद्दकुत्ति मेघाणि पम्भासीलसमाहितं ॥ ९ ॥

( २३० )

नेकसं जम्बोनदस्सेव को तं निम्भितुमरहति ।

देवापि तं पसंसन्ति ब्रह्मणाऽपि पसंसितो ॥ १० ॥

जिस आदमी की प्रशंसा विश्व लोग सोच विचार कर रोज रोक करें, उस दोष-रहित मेघावो, प्रवाही शील से युक्त, जम्बूनद की अम्पली के समान आदमी को निन्दा कौन कर सकता है । देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं, और ब्रह्मा द्वारा भी वह प्रशंसित होता है ।

( २३१ )

कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संयुतो सिया ।

कायदुरुचरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरे ॥ ११ ॥

काय की संजलता से बचा रहे । काय का संयम रक्खे । शारीरिक दुरुचरित को छोड़कर शरीर से सदाचरण करे ।

( २३२ )

वचीपकोपं रक्खेय्य वाचाय संयुतो सिया ।

वचीदुरुचरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे ॥ १२ ॥

बाणी की चंचलता से बचे । बाणी का संयम रखते । बाणी का  
दुश्चरित्र छोड़कर बाणी का सदाचरण करे ।

( २३३ )

मनोपक्रोपं रक्षेद्य मनसा संवृतो सिया ।

मनोदुश्चरित्रं हिक्त्वा मनसा सुचरितं चरे ॥१३॥

मन की चञ्चलता से बचे । मन का संयम रखते । मन का दुश्च-  
रित्र छोड़कर मानसिक सदाचरण करे ।

( २३४ )

कायेन संवृता धीरा अथो वाचाय संवृता :

मनसा संवृता धीरा ते वे सुपरिसंवृता ॥१४॥

जो काय से संवृत है, जो वाणी से संवृत है, जो मन से संवृत है,  
वे ही अश्वी तरह से संवृत कहे जा सकते हैं ।

## १८—मलवग्गो

( २३५ )

परुपत्तासो च दानिसि, यमपुरिसापि च ते उपट्ठिता ।

उप्योगमुत्ते च तिट्ठसि पाथेय्यम्पि च ते न विज्झति ॥ १ ॥

इस वक्तू पीले-पत्ते के समान है, तेरे पास यम-दूत आ लगे हैं, तेरे प्रयाण की तैयारी है; और तेरे पास पाथेय भी नहीं है ।

( २३६ )

सो करोहि दीपमच्चनो स्त्रिपं वायम पथिज्जतो भव ।

निद्धन्तमलो अनङ्गणो दिव्वं अरियभूमामेहिसि ॥२॥

इसलिए अपना दीप बना, जल्दी उद्योग करके परिकृत बन; मल-रहित, दोल-रहित होकर तू दिव्य आर्य-भूमि को प्राप्त करेगा ।

( २३७ )

उपनीतवयो च दानिसि

सम्पयातोसि यमस्स सन्तिके ।

वासोपि च ते मत्ति अन्तरा

पाथेय्यम्पि च ते न विज्झति ॥ ३ ॥

तेरी आयु समाप्त हो गई, तू यम के पास पहुँच गया है, तेरे लिए रास्ते में निवास-स्थान भी नहीं है और तेरे पास पाथेय भी नहीं है ।

( २३८ )

सो करोहि दीपमस्तनो खिप्प वायम पखित्तो भव ।

निद्वस्तमलो अनङ्गणो न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥ ४ ॥

इसलिए अपना दीप बना जल्दी उद्योग करके पखित्त बन, माल-रहित, दोष-रहित होकर तू जन्म और बुढ़ापे के बन्धन में नहीं पड़ेगा ।

( २३९ )

अनुपुष्पेन मेधावी भोकथोकं खणे खणे ।

कम्मरो रजतस्सेव निद्वमे मलमस्तनो ॥ ५ ॥

जिस प्रकार सुनार चाँदी के मल को दूर करता है, उसी प्रकार मेधावी ( पुरुष ) प्रतिपक्ष धोका-धोका करके अपने दोषों को दूर करे ।

( २४० )

अथसाध मलं समुद्धृतं

तदुद्धृत्य तमेव आवृत्ति ।

एवं अतिघोनचारिणं

सककम्मानि नयन्ति बुगगतिं ॥ ६ ॥

लोहे से उत्पन्न मोर्चा लोहे से पैदा होकर लोहे को ही खा झलता है । उसी प्रकार अति चञ्चल ( मनुष्य ) के अपने ही कर्म उसे बुगगति को ले जाते हैं ।

( २४१ )

असकम्मायमला मग्गा अनुदानमला घरा ।

मलं वयणस्स कोसज्जं पमावो रक्खतो मलं ॥ ७ ॥

आवृत्ति न करना ( वेद- ) मन्त्रों का मल ( = मोर्चा ) है, मरम्मत न करना घरों का मल ( = मोर्चा ) है, आलस्य ( शरीर के ) सौन्दर्य का मल ( = मोर्चा ) है और असावधानी पहरेदार का मल ( = मोर्चा ) है ।

( २४२ )

मल्लिस्थिया दुश्चरितं मण्डोरं वृत्तो मलं ।

मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परमिद् च ॥ ८ ॥

दुश्चरित होना क्री का मोर्चा है, कंजूस होना दाता का मोर्चा है,  
और पाप-कर्म इस लोक तथा परलोक में मोर्चा है ।

( २४३ )

ततो मला मलतरं अविक्षा परमं मलं ।

एतं मलं पदस्वान निम्मला होय भिक्खवो ॥ ९ ॥

लेकिन इन सब मलों से बढ़कर मल है—अविद्या । भिक्षुओं !  
इस मल को छोड़कर निर्मल बनो ।

( २४४ )

सुखीवं अहिरीकेन काकसूरेन धंसिना ।

पक्खन्दिना पगम्भेन संकिलिहेन जीवितं ॥ १० ॥

( पाप के प्रति ) निर्लज्ज, क्री के समान छीनने में शर,  
( परहित- ) विनाशक, पतित, उच्छृङ्खल और मलिन बनकर जीवन  
व्यतीत करना आसान है ।

( २४५ )

हिरीमता च सुखीवं निरुधं सुचिगवेसिमा ।

अत्तीलेनपगम्भेन सुदुधाजीवेन पस्सता ॥ ११ ॥

लेकिन ( पाप के प्रति ) लज्जाशील, निरुध ही पवित्रता का विचार  
करते हुये, आलस्य-रहित, उच्छृङ्खलता-रहित शुद्ध-आजीविका के साथ,  
विचारवान् बनकर जीवन व्यतीत करना कठिन है ।

( २४६ )

यो पापमतिपातेति मुखापादश्च भासति ।  
लोके अविष्मन् आदित्यति परदारश्च गच्छति ॥१२॥

( २४७ )

सुरामैर्यपानश्च यो नरो अतुयुञ्जति ।  
इधेवमेसो लोकस्मिन् मूलं खनति अन्तनो ॥१३॥

जो हिंस करता है, जो झूठ बोलता है, जो चोरी करता है, जो पराई स्त्री के पास जाता है और जो मद्यपान करता है, वह आदमी यही इसी लोक में अपनी गङ्गा खोदता है ।

( २४८ )

एवं भो पुरिस ! जानाहि पापधम्मा असकथता ।  
मा तं लोभो अघम्मा च चिरं दुक्खाय रम्भसु ॥१४॥

हे पुरुष, इसलिय ऐसा जान कि असंयत(जन)पापी (होते हैं) दुर्कर्म लोभ और अघर्म चिरकाल तक दुःख में न रोंधे ।

( २४९ )

ददन्ति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो ।  
तत्थ यो मङ्गु भवति परेसं पानभोजने ।  
न सो विवा वा रसि वा समाधिं अधिगच्छति ॥१५॥

लोग अपनी-अपनी ब्रह्मा और प्रसन्नता के अनुसार दान देते हैं, जो बूखों के खाने-पीने में असन्तोष प्रकट करता है, उसको न रात को शान्ति प्राप्त होती है न दिन को ।

( २५० )

यस्स भेत्तं सभुच्छिन्नं मूलधत्तं समूहतं ।

स वे विवा या रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति ॥१६॥

( लेकिन ) जिसमें से यह ( भाव ) अङ्ग मूल से जाया रहा है वह रात को भी, दिन को भी, सदा शान्ति से रहता है ।

( २५१ )

नत्थि रागसमो अग्निं नत्थि दोससमो गहो ।

नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥१७॥

राग के समान आग नहीं, द्वेष के समान ग्रह नहीं, मोह के समान जाल नहीं और तृष्णा के समान नदी नहीं ।

( २५२ )

सुवस्सं वज्जमब्बेसं अत्तनो पन दुइसं ।

परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथासुसं ।

अत्तनो पन छादेति कल्लं यं कित्वा सठो ॥१८॥

दूसरों के दोष देखना आसान है, अपने दोष देखना कठिन । ( आदमी ) दूसरों के दोषों को तो भुस की भांति उड़ता है किन्तु अपने दोषों को ऐसे ढकता है जैसे बेईमान कुवारी पासे को ।

( २५३ )

परवज्जनुपस्सिस्स मिक्खं उवमन्नसब्बिमो ।

आसया तस्स वड्ढन्ति आरा सो असवक्कया ॥१९॥

दूसरों के दोष देखते फिरनेवाले के, सदा चिढ़ते रहनेवाले के आशय बढ़ते हैं । ऐसे आदमी के आशय बढ़ते हैं । ऐसा आदमी आशयों के शय से दूर है ।

( २५४ )

आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।

पपञ्चामिरता पञ्चा निप्पपञ्चा तथागता ॥२०॥

आकाश में चिह्न नहीं; ( आर्य-अष्टांगिक-मार्ग से ) बाहर भ्रमण नहीं । लोग प्रपञ्च में लगे रहते हैं । तथागत प्रपञ्च-हीन हैं ।

( २५५ )

आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।

सङ्गारा सस्सत्ता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिद्धितं ॥२१॥

आकाश में चिह्न नहीं, ( आर्य अष्टांगिक-मार्ग से ) बाहर भ्रमण नहीं । संस्कार नित्य नहीं हैं और बुद्धों में अस्थिरता नहीं ।

---



## १६—धम्मद्वग्गो

( २५६ )

न तेन होति धम्मद्वो येनत्थं साहसा नये ।  
यो च अत्थं अनस्यञ्ज एभो निष्क्रेय्य पण्डितो ॥ १ ॥

( २५७ )

असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे ।  
धम्मस्स गुप्तो मेधावी धम्मद्वोति पवुवति ॥ २ ॥

जो आदमी सहसा किसी बात का निश्चय कर दे, वह धर्म-स्थित नहीं कहलाता । जो पण्डित-जन अर्थ, अनर्थ दोनों का अच्छी तरह विचार कर, धीरे-धीरे साय, निष्पन्न होकर न्याय करता है, वही मेधावी धर्म-स्थित कहलाता है ।

( २५८ )

न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।  
लेमी अवेरी अभयो पण्डितोति पवुवति ॥ ३ ॥

बहुत बोलने से पण्डित नहीं होता । जो धैर्यवान्, अवेरी और निर्भय होता है, वही पण्डित कहलाता है ।

( २५९ )

न तावता धम्मचरो यावता बहु भासति ।  
यो च अप्पमि सुत्थान धम्मं कायेन पस्सति ।  
स वे धम्मचरो होति यो धम्मं नप्पमस्सति ॥ ४ ॥

बहुत बोलने भर से धर्मभर नहीं होता । थोड़ा भी धर्म सुनकर जो काय से उसके अनुसार आचरण करता है, और जो धर्म में प्रमाद नहीं करता, वही धर्मभर है ।

( २६० )

न तेन धेरो होति येन'स्स पलितं सिरा ।

परिपक्को पयो तस्स भोचजिण्यो'ति वुच्चति ॥ ५ ॥

शिर के बाल पकने मात्र से कोई स्थविर नहीं होता, उसकी आयु पक गई रहती है, वह व्यर्थ में धृज हुआ कहलाता है ।

( २६१ )

एग्धि सक्कञ्च धम्मो च अहिंसा सक्कम्मो दम्मो ।

स वे धम्ममलो धोरो धेरो गति पवुच्चति ॥ ६ ॥

जिसमें छत्थ, धर्म, अहिंसा, संकम और दम हैं, वही विगतभल, श्री स्थविर कहलाता है ।

( २६२ )

न धाक्करस्समत्तेन कय्यापोक्खरताय वा ।

साधुरूपो नरो होति इत्थुकी मच्छरी सठो ॥ ७ ॥

( २६३ )

यस्स चेत्तं समुच्छिन्नं मूलवच्छर्पं समूहत्तं ।

स कत्तदोसो मेधावी साधुरूपो गति वुच्चति ॥ ८ ॥

( यदि ) वह ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ हो, तो यक्ता होने से, वा कुन्दर रूप होने से आदमी साधुरूप नहीं होता । जिस आदमी के यह दोष जड़-मूल से नष्ट हो गये हैं, जो दोष-रहित हैं, जो मेधावी हैं, वही साधुरूप कहलाता है ।

( २६४ )

न शुण्डकेन समणो अन्नतो अलिकं भणो ।  
इच्छालोभसमापन्नो समणो किं भविससति ॥ ६ ॥

( २६५ )

यो च समेति पापानि अणुं धूलानि सन्नसो ।  
समित्ता हि पापानं समणोऽसि पवुसति ॥ १० ॥

जो मत्त-हीन है जो मिथ्या-भ्रषी है, वह प्रसिद्ध होने मात्र से अमण नहीं होता । इच्छा-लोभ से भरा ( मनुष्य ) क्या अमण बनेगा । जो सब छोटे-बड़े पापों का शमन करता है, उसे पापों का शमन-कर्ता होने के कारण से अमण कहते हैं ।

( २६६ )

न तेन भिक्षु [ सो ] होति यावता भिक्षते परे ।  
विस्सं धम्मं समादाय भिक्षु होति न तावता ॥ ११ ॥

दुराचरण-युक्त मनुष्य दूसरों से भीख माँगनेवाला होने ( मात्र ) से भिक्षु नहीं होता ।

( २६७ )

योश्च पुच्छन्न पापञ्च भाहित्वा ब्रह्मचरियथा ।  
सङ्गाय लोके चरति ■ वे भिक्षु णित वुसति ॥ १२ ॥

जो पुण्य और पाप से परे हो गया है, जो ब्रह्मचारी है, जो ज्ञान-पूर्वक लोक में विचरता है, वह भिक्षु है ।

( २६८ )

न मोनेन सुनी होति मुत्तरूपो अविससु ।  
यो च तुलं च परगच्छ वरमादाय पण्डितो ॥ १३ ॥

( २६६ )

पापानि परिवर्ज्येति स मुनी तेन सो मुनि ।

यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुवति ॥१४॥

मूढ़ और अधिद्वान् केवल मौन रहने से मुनि नहीं होता । जो परित्यक्त दुःखा की भांति तोलकर, उत्तम तत्त्व को ग्रहण कर पापों को त्यागता है, वही असली मुनि है । जो दोनों लोकों का मनन करता है, वही मुनि होता है ।

( २७० )

न तेन अरियो ह्येति येन पाणानि हिंसति ।

अहिंसा सत्त्वपाणानं अरियो'ति पवुवति ॥१५॥

प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्यमी आर्य नहीं होता, जो किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता, वही आर्य होता है ।

( २७१ )

म सीलञ्चतमत्तेन माहुसरुचेन वा पुन ।

अथवा समाधित्तमेन विविक्खसयनेन वा ॥१६॥

( २७२ )

कुसामि नेक्खम्मसुखं अपुत्तुज्जनसेवितं ।

भिक्षु । विस्सासमापादि अप्यत्तो व्यासवक्खयं ॥१७॥

भिक्षुओ ! शीलवान् होने से, ब्रती होने से, बहुभुत होने से, समाधि लाभी होने से वा एकान्तवासी होने मात्रसे यह विश्वास न कर लो कि मैं जनों से अपेक्षित नेक्कम्म-सुख का आनन्द ले रहा हूँ । अब एक आत्मव-ज्ञ ( चित्त-मल्लो का त्याग ) न कर लो, तब तम चैन न लो ।

## २०—मग्गवग्गो

( २७३ )

मग्गानट्टुक्किको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा ।

विरागो सेट्ठो सम्मानं द्विपदानञ्च चक्खुमा ॥ १ ॥

मार्गों में अष्टांगिक-मार्ग अष्ट है, तत्त्वों में चार आर्य सत्य अष्ट है, धर्मों में वैराग्य अष्ट है, और चक्षुमान् ( = बुद्ध ) अष्ट हैं ।

( २७४ )

एसो'व मग्गो नत्थ'कम्भो वस्सनस्स विसुद्धिया ।

एतं हि तुम्हे पटिपज्जय मारस्सेतं पमोहनं ॥ २ ॥

ज्ञान की प्राप्ति के लिए यही ( एक ) मार्ग है, दूसरा नहीं । भिक्षुओं ! तुम इसी रास्ते पर चलो । यह मार को मूर्च्छित करने वाला है ।

( २७५ )

एतं हि तुम्हे पटिपज्जा तुक्खस्सन्तं करिस्सथ ।

अक्खतो वे मया मग्गो अक्खाय सत्त्वसम्भनं ॥ ३ ॥

इस मार्ग पर चलने से तुम दुःख का अंत कर सकोगे । संसार-दुःख को शून्य-समान स्वयं जानकर मैंने यह मार्ग कहा है ।

( २७६ )

तुम्हेहि किञ्च आतप्पं अक्खतात्तारो तथागता ।

पटिपज्जा पमोक्खन्ति अयिनो मारवज्जना ॥ ४ ॥

इसमें ही कृत्य करना है, तथागत तो केवल ( मार्ग ) बतलाने-  
वाले हैं। इस मार्ग पर आरुढ़ होकर ग्यान करनेवाले मार-बन्धन से  
मुक्त होंगे।

( २७७ )

सब्बे सङ्गारा अनित्यं इति यदा पञ्चाय पस्सति ।

अथ निज्जिन्वत्ति दुक्खे, एसमग्गो विसुद्धिया ॥ ५ ॥

सभी संस्कार ( वनी चीड़ों ) अनित्य हैं—जब इस बात को प्रज्ञा  
से देखता है तब आदमी को संसार से विराग होता है, यही विशुद्धि का  
मार्ग है।

( २७८ )

सब्बे सङ्गारा दुक्खा इति यदा पञ्चाय पस्सति ।

अथ निज्जिन्वत्ति दुक्खे, एसमग्गो विसुद्धिया ॥ ६ ॥

सभी संस्कार दुःख हैं—जब इस बात को प्रज्ञा से देखता है तब  
आदमी को संसार से विराग पैदा होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है।

( २७९ )

सब्बे धम्मा अनत्ता इति यदा पञ्चाय पस्सति ।

अथ निज्जिन्वत्ति दुक्खे, एसमग्गो विसुद्धिया ॥ ७ ॥

सभी धर्म ( उपदार्थ ) अनात्म हैं—जब इस बात को प्रज्ञा से  
देखता है तब आदमी को संसार से विराग होता है, यही विशुद्धि का  
मार्ग है।

( २८० )

सद्धानकालमिदं

अमुदुद्दामो

मुवा कली आलसिपंचवेत्तो ।

संसज्जसङ्खप्पमनो कुसीतो

पब्बाय मग्गं अलसो न विन्दति ॥ ८ ॥

जो उद्योग नहीं करता, सुवा और बली होकर ( भी ) आलस्य से युक्त है, जिसका मन व्यर्थ के संकल्पों से मरा है—ऐसा आलसी आदमी प्रज्ञा के मार्ग को नहीं प्राप्त कर सकता ।

( २८१ )

वाचासुरक्खी मनसा सुसंयुतो

कायेन च अकुसलं न कथिरा ।

एते तयो कम्मपथे विसोधये

आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं ॥ ९ ॥

जो वाणी की रक्षा करता है, जो मन से संयमी है, जो शरीर से पाप-कर्म नहीं करता है; जो इन तीनों कर्मेन्द्रियों को शुद्ध रखता है नहीं बुद्ध के बता लाये धर्म का सेवन कर सकता है ।

( २८२ )

योगा वे जायती भूरि अयोगा भूरिसङ्खयो ।

एतं द्वेधापथं अत्त्वा भवाय विभवाय च ।

तत्तत्तानं निवेसेय्य यथा भूरि पवडुति ॥ १० ॥

योग ( = धम्मार्थ ) से ज्ञान बढ़ता है, योग न करने से ज्ञान का क्षय होता है । उत्पत्ति और विनाश के इस दो प्रकार के मार्ग को जानकर अपने आपको वैसे रखें, जिससे ज्ञान की वृद्धि हो ।

( २८३ )

वनं झिम्बं मा रुक्खं वनतो जायती भयं ।

झेत्वा वनञ्च वनञ्च निम्बना होय भिक्खवो ॥ ११ ॥

वन को काटो, वृद्ध को मत काटो । भय वन से पैदा होता है । हे  
पितृन्धो ! वन और भाड़ी को काटकर निर्वाण प्राप्त करो ।

( २८४ )

याव हि वनयो न क्षिजति अन्तुमसोपि नरस्स नारिषु ।

पटिबद्धमनो ■ ताव सो वच्छो स्त्रीरपको'थ मातरि ॥१२॥

जब तक स्त्री में पुरुष की अणु मात्र भी कामना बनी रहती है,  
तब तक वह वैसे ही बँधा रहता है जैसे पृथ पीने वाला गड़गड़ा अपनी  
माँ से ।

( २८५ )

उच्छिद्य सिनेहमस्यनो कुमुदं सारदिकं'थ पाणिना ।

सन्तिमरगमेव ब्रूय निध्वानं सुगतैर्न वैसितं ॥१३॥

जिस तरह हाथ से शरद ( शूद्र ) के कुमुद को तोड़ा जाता है,  
उसी तरह अपने ( दिल से ) स्नेह को उच्छिद्य कर दे; और सुगत  
द्वारा उपदिष्ट शान्ति-मार्ग निर्वाण का अनुसरण करे ।

( २८६ )

इष वस्सं वसिस्सामि इष हेमन्तगिन्दिषु ।

इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न कुण्ठति ॥१४॥

यहाँ वर्षा-वात कर्कशा, यहाँ हेमन्त में रईशा, यहाँ ग्रीष्म-ऋतु में,  
मूर्ख इस प्रकार सोचता है, विष को नहीं देखता ।

( २८७ )

तं पुत्तपसुसम्मतं व्यासत्तमनसं नरं ।

सुत्तं गामं महोषो'थ मक्खु आदाय गच्छति ॥१५॥

पुत्र और पशु में आसक्त (चित्त) मनुष्य को मृश्यु वैसे ही ले जाती  
है, वैसे छोटे गाँव को ( नदी की ) बड़ी बाढ़ ।



( २८८ )

न सन्ति पुत्रा ताणाय न पिता नापि बन्धवा ।

अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि भातिस्सु ताणता ॥१६॥

न पुत्र रक्षा कर सकते हैं, न पिता, न रिश्तेदार । जब मृत्यु पकड़ती है, तो रिश्तेदार नहीं बचा सकते ।

( २८९ )

एतमत्थवस्स' ब्रह्मा परिवृत्तो सीलसंवृतो ।

निब्बाण-नामनं भग्गं सिण्णमेव विसोधये ॥१७॥

इस बात को जानकर शीलवान् परिवृत ( जन ) को चाहिये कि निर्वाण की ओर जानेवाले मार्ग को शीघ्र प्राप्त करे ।

## २१ — पकिरणकवम्भो

( २६० )

मत्तासुखपरिक्वाणा पस्से पे विपुलं सुखं ।

चजे मत्तासुखं घीरो सम्पत्सं विपुलं सुखं ॥ १ ॥

थोड़े से सुख के परित्याग से यदि बहुत सुख की प्राप्ति होती दिखाई दे तो बुद्धिमान् आदमी को चाहिये कि बहुत सुख का स्थापन करके थोड़े सुख को छोड़ दे ।

( २६१ )

परयुपसूपदानेन यो अत्तनो सुखमिच्छति ।

वेरसंसगगसंसदो वेरा सो न पमुचति ॥ २ ॥

दूसरे को दुःख देकर जो अपने लिए सुख चाहता है, वेर के संसर्ग में आया हुआ वह वेर से मुक्त नहीं होता ।

( २६२ )

यं हि किञ्चं तत्पविद्धं अकिञ्चं पन कथिरति ।

उत्तत्तानं पमत्तानं तेसं ववुन्ति आसवा ॥ ३ ॥

जो कर्तव्य है उसे न करनेवाले, जो अकर्तव्य है उसे करनेवाले मल्ल-युक्त प्रमादी जनों के आश्रय ( = चित्त के मल ) बढ़ते हैं ।

( २६३ )

येसञ्च सुसमारत्ता निञ्चं कायगता सति ।

अकिञ्चं ते न सेवन्ति किञ्चे सातवकारिनो ।

सत्तानं सम्पजानानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ ४ ॥

जिनकी कायानुस्मृति नित्य उपस्थित है, वह भ्रकर्तव्य को नहीं करते, कर्तव्य को निरुत्तर करते हैं। ऐसे स्मृतिमग्न और सचेत लोगों के आश्रय क्षय की प्राप्ति होती है।

( २६४ )

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च स्वस्तिये ।

रुद्धं सानुचरं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ॥ ५ ॥

तृष्णा ( = माता ), अहंकार ( = पिता ) आत्म-दृष्टि तथा उन्मत्त-दृष्टि ( = दो क्षत्रिय राजाओं ), राग ( = अनुचर ), और पाँच उपादन स्कंध ( = राक्षस ) का हनन करके ब्राह्मण निष्पाप होता है।

( २६५ )

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च सोस्थिये ।

वेद्यग्वपन्नमं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ॥ ६ ॥

तृष्णा ( = माता ), अहंकार ( = पिता ), आत्म-दृष्टि तथा उन्मत्त-दृष्टि ( = दो क्षत्रिय राजाओं ) और ज्ञान के पाँच आवरणों ( = व्याघ्र ) का हनन करके ब्राह्मण निष्पाप होता है।

( २६६ )

सुप्पबुद्धं पुबुब्भन्ति सदा गोतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च निज्जं बुद्धगता सति ॥ ७ ॥

जिनकी दिन-रात बुद्ध-विषयक स्मृति बनी रहती है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब आगच्छक रहते हैं।

( २६७ )

सुप्पबुद्धं पुबुब्भन्ति सदा गोतम सावका ।

येसं दिवा च रत्तो च निज्जं धम्मगता सति ॥ ८ ॥

जिनकी दिन-रात धर्म-विषयक स्मृति बनी रहती है, गौतम ( बुद्ध )  
के वह शिष्य खूब जागरूक रहते हैं ।

( २६८ )

सुप्पबुद्धं पबुक्कमन्ति सदा गौतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च निज्जं सङ्गता सति ॥ ६ ॥

जिनकी दिन-रात संघ-विषयक स्मृति बनी रहती है, गौतम ( बुद्ध )  
के वह शिष्य खूब जागरूक रहते हैं ।

( २६९ )

सुप्पबुद्धं पबुक्कमन्ति सदा गौतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च निज्जं कायगता सति ॥ १० ॥

जिनकी दिन-रात काय-स्मृति बनी रहती है, गौतम ( बुद्ध ) के  
वह शिष्य खूब जागरूक रहते हैं ।

( ३०० )

सुप्पबुद्धं पबुक्कमन्ति सदा गौतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च अहिंसाय रत्तो मनो ॥ ११ ॥

जिनका मन दिन-रात अहिंसा में रत रहता है, गौतम ( बुद्ध ) के  
वह शिष्य खूब जागरूक रहते हैं ।

( ३०१ )

सुप्पबुद्धं पबुक्कमन्ति सदा गौतमसावका ।

येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रत्तो मनो ॥ १२ ॥

जिनका मन दिन-रात बोध-अभ्यास ( — भावना ) में रत रहता  
है, गौतम के वह शिष्य खूब जागरूक होते हैं ।

( ३०२ )

दुष्पञ्चजं दुरभिरमं दुरावासा परा दुस्सा ।

दुक्खो समानसंघासो दुक्खानुपतितद्वगू ।

तस्मा न च अद्वगू सिया न च दुक्खानुपतितो सिया ॥११॥

प्रमत्त्या में रत होना दुष्कर है, गृहरथ में रहना दुःखकर है, असमान लोगों के साथ रहना दुःखकर है, आवागमन में पकना भी दुःखकर है । इसलिए न मार्ग में पड़े, न दुःख में गिरे ।

( ३०३ )

सद्धो सीलेन सम्पन्नो यसोभोगसमपितो ।

यं यं पदेसं भजति उत्थ तत्थेव पूजितो ॥१२॥

जो भद्रावान् है, जो सदाचारो है, जो यशस्वी है, जो सम्पन्निसाली है वह जहाँ जहाँ जाता है वही वही सत्कार पाता है ।

( ३०४ )

दूरे सन्तो पकासेमि हिमवन्तोव पञ्चता ।

असन्तोऽप्य न विस्सन्ति रत्तिस्सिद्धा यथा सरा ॥१३॥

अत्युच्च हिमालय-पर्वत की तरह दूर से प्रकाशित होते हैं, असत्युच्च रात में जैसे बाण की तरह दिखाई नहीं देते ।

( ३०५ )

एकासनं एकसेय्यं एकोधरमतन्दितो ।

एको दमवमत्तानं वनस्ते रमितो सिया ॥१४॥

एकासन, एक शय्यावाला, आलस्य-रहित (हो) अकेला विचारने वाला अपने आपको अकेला दमन करनेवाला वन में आनन्द से रता है ।

## २२—निरयवन्तो

( ३०६ )

अभूतवादी निरयं उपेति यो वापि

कस्या 'न करोमी' ति चाह ।

समोपि ते पेव समा भवन्ति

निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥ १ ॥

असत्यवादी नरक में जाता है, जो करके 'नहीं किया' कहता है, वह भी नरक में जाता है । दोनों ही प्रकार के नीच कर्म करनेवाले भवकर बराबर हो जाते हैं ।

( ३०७ )

कासावकण्ठा बहवो पापघम्मा असम्भूता ।

पापा पापेहि कम्मेहि निरयन्ते उप्पज्जरे ॥ २ ॥

कंठ में कासाय-वज्र आते कितने ही असंयमी पापी हैं । वह पापी अपने पाप - कर्मों के कारण नरक में उत्पन्न होते हैं ।

( ३०८ )

सेय्यो अयोगुलो मुचो उत्तो अग्निस्सिखुपमो ।

यद्धने मुज्जेय्य दुस्सीलो रूपिण्डं असम्भूतो ॥ ३ ॥

दुराचारी असंयमी हो रेश का अन्न ( राइ-पिण्ड ) खाने से अग्नि-  
विष्ठा के समान तप्त लोहे का गोला खाना उत्तम है ।

( ३०६ )

चत्तारी ठानानि नरो पमसो

आपञ्जती परदारूपसेवी ।

अपुण्यत्ताभं न निकामसेय्यं

निन्दं तत्तियं निरयं चतुत्थं ॥ ४ ॥

( ३१० )

अपुण्यत्ताभो च गती च पापिका,

भीतस्स भीताय रती च योकिका ।

राजा च दृढं गरुडं पणेति

तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥ ५ ॥

प्रमादी, परस्त्रीगामी मनुष्य की चार गतियाँ होती हैं—अपुण्य-  
त्ताभ, दुःख से निद्रा का न आना, निद्रा और नरक । ( अथवा )  
अपुण्य-त्ताभ, दुर्गति, भयभीत ( पुरुष ) की भयभीत ( स्त्री ) से  
अत्यन्त रति, राजा का भारी सजा देना—इसलिए मनुष्य पर-स्त्रीगमन  
न करे ।

( ३११ )

कुसो यथा दुग्गहीतो हस्यमेवानुकम्पति ।

सामकम् दुप्परामदुत्तं निरयायुपकव्वति ॥ ६ ॥

जिस प्रकार कुश यदि ठोसे, ठीक से न प्रहस्य करे तो हाथ छेद देता  
है, उसी प्रकार संन्यास (= धामस्य ) यदि उसे ठीक से न पालन करे  
तो नरक में ले जाता है ।

( ३१२ )

यं किञ्चि सिद्धिस्स कम्मं सक्कित्तिट्ठं च यं वत्तं ।

सक्कस्सदं प्रहयपरियं न सं होति महप्पलं ॥ ७ ॥

जो कार्य ढीला-ढाला है, जो व्रत मल-युक्त है, जो महाचम्य अशुद्ध है, उसका महान् फल नहीं होता ।

( ३१३ )

कयिरञ्जये कयिराजेन वृद्धमेन परस्मै ।

सिथिलोहि परिष्ठाजो भिष्यो आकिरते रजं ॥ ८ ॥

यदि किसी काम को करना है, तो करे, उसमें दृढ़ करारम के साथ गुट जावे । ढीला-ढाला संन्यासी अधिक धूल उड़ाता है ।

( ३१४ )

अकृतं वृक्षतं सेव्यो पच्छा तपति वृक्षतं ।

कतञ्च सुकृतं सेव्यो यं कश्चा नानुतप्पति ॥ ९ ॥

पाप का न करना अच्छा, पाप करनेवाले को अनुताप होता है; शुभ-कर्म का करना अच्छा, शुभ कर्म करनेवाले को अनुताप नहीं होता ।

( ३१५ )

नगरं यथा पृथग्गुप्तं गुप्तं सन्तरवाहिरं ।

यव गोपेथ अस्तानं खणौ वे मा वपृथग्गता ।

खणातीता हि सोचन्ति निरयन्ति समप्तिता ॥ १० ॥

जैसे सीमान्त देश का गढ़ ( = नगर ) अन्दर बाहर से सुरक्षित होता है, उसी तरह से अपनी सँभाल करे—एक क्षण भी न जाने दे । समय ( हाथ से चले ) जाने पर नरक में पहुँकर शोक करना होता है ।

( ३१६ )

अज्ञानिता ये लब्धन्ति लब्धिता ये न लब्धरे ।

मिच्छादिदिठसमाधाना सप्ता गच्छन्ति दुर्गति ॥ ११ ॥



अलज्जा ( के काम ) में जो लज्जा करते हैं, लज्जा के काम में जो लज्जा नहीं करते ऐसे झूठी धारणावाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

( ३१७ )

अभये च भयवस्सिनो भये च अभयवस्सिनो ।

मिच्छादिद्विसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुर्गतिं ॥१९॥

अभय ( के स्थान ) में जो भय करते हैं, भय में जो भयशील रहते हैं—ऐसे झूठी धारणावाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

( ३१८ )

अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे आवज्जवस्सिनो ।

मिच्छादिद्विसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुर्गतिं ॥२०॥

अदोष को जो दोष समझते हैं, दोष को जो अदोष समझते हैं—ऐसे झूठी धारणावाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

( ३१९ )

वज्जञ्च वज्जतो यत्था अवज्जञ्च अवज्जतो ।

सम्मादिद्विसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुगतिं ॥२१॥

दोष को जो दोष करके जानते हैं, अदोष को अदोष, ऐसे ठीक धारणावाले प्राणी सुगति को प्राप्त होते हैं ।

## २३—नागवम्भो

( ३२० )

अहं नागोऽयं सङ्गामे चापतो पतितं सरं ।

अतिवाक्यं तितिक्विस्सं दुस्सीलो हि महुज्जनो ॥१॥

जैसे युद्ध में हाथी धनुष से गिरे बाण को सहन करता है, वैसे ही मैं कटुवाक्यों से सँभूँगा (क्योंकि) संसार में दुर्जन बहुत हैं ।

( ३२१ )

दन्तं नयन्ति सन्निधिं दन्तं राजामिरुहति ।

दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु यो तिवाक्यं तितिक्वति ॥ २ ॥

शिखित (हाथी) को युद्ध में ले जाते हैं, शिखित हाथी पर राजा चढ़ता है, मनुष्यों में शिखित (मनुष्य) श्रेष्ठ हैं जो कटुवाक्यों को सह सकता है ।

( ३२२ )

वरं अस्सतरा दन्ता आजानीया च सिन्धवा ।

कुक्षरा च महानागा अन्तदन्ता सतो वरं ॥ ३ ॥

सुन्दर, आजानीय (= अन्धे सेत के) सिन्धी घोड़े और महानाग हाथी शिखित हो तो श्रेष्ठ हैं—आदमी शिखित हो तो इन सबसे श्रेष्ठ है ।

( ३२३ )

न हि एतेहि यानेहि गच्छेय्य अगतं विसं ।

यथाऽचना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ॥ ४ ॥

इन ( चोड़े, गहरी आदि ) वाहनो से कोई निर्वाण को नहीं जा सकता, जैसे अम्बावी स्वयं जा सकता है । शिक्षित ( मनुष्य ) संयत शस्त्रियों द्वारा निर्वाण प्राप्त कर सकता है ।

( ३२४ )

धनपालको नाम कुल्लरोकटकप्पभेदनो दुग्गिधारयो ।

बद्धो कवलं न सुखति सुमरति नागधनस्स कुल्लरो । ॥५॥

सेना को तितर बितर कर देनेवाला, धनपालक नाम का दुर्घर्ष हाथी ( आज ) बन्धन में बँधा होने से कवल नहीं खाता; अपने हाथियों के जंगल की याद करता है ।

( ३२५ )

मिद्धी यथा होति महग्गसो च निहायिता सम्परिवत्तसायी ।

महावराहोश्च निषापपुट्टो पुनपुनराकममुपेति मन्दो ॥६॥

जो आलसी, बहुत खानेवाला, निद्राालु, करबट बढ़ल बढ़ल कर सोनेवाला, दाना खाकर पले मोटे सूअर की भाँति होता है, वह मन्द-मति बार बार गर्भ में पड़ता है ।

( ३२६ )

इदं पुरे चित्तमप्यारि चारिकं

थेनिच्छकं यत्थ कामं यथासुखं ।

तद्वज्जहं निग्गहेस्सामि थेनिसो

इत्थिप्यभिन्नं विथ जंजुसग्गहो ॥ ७ ॥

पहले यह चित्त कहीं इसकी इच्छा हुई, यथा-काम यथा-सुख विचरा; लेकिन आज मैं इसे अच्छी तरह काधू में ककूँगा, जैसे महावत मत्त हाथी को ।

( ३२७ )

अप्पमादरता होथ स, चित्तमनुरक्खथ ।

दुग्गा उद्धरव-त्तानं पक्के सत्तो व कुल्लरो ॥ ८ ॥

जागरूक रहो, अपने मन को संभाल कर रखो । पक्क में कैसे हाथी की तरह अपने आप को ( राग आदि के ) गढ़े में से निकालो ।

( ३२८ )

सचे लभेय निपक्कं सहायं

सखिं चरं साधुविहारि धीरं ।

अभिसुव्य सव्वानि परिस्सयानि

धरेय्य तेन, समनो सत्तीमा ॥ ९ ॥

यदि परिपक्व ( बुद्धि ) सखरिण साथी मिले, तो सब मित्रों को हटाकर सचेत प्रसन्न-चित्त हो उसके साथ विचरे ।

( ३२९ )

नो चे लभेय निपक्कं सहायं

सखिं चरं साधुविहारि धीरं

राजा थ रहुं विजितं पहाव

एको चरे मातङ्ग-रक्खेव नागो ॥ १० ॥

लेकिन यदि परिपक्व ( बुद्धि ) सखरिण साथी न मिले तो जैसे पराजित राजा को छोड़ राजा ( या ) जंगल में हाथी अकेला विचरता है, उसी तरह अकेला विचरे ।

( ३३० )

एकस्स चरितं सेव्यो नत्थि बाले सहायता

एको चरे न च पापानि कथिरा

अप्पोस्सुकको मातङ्ग-रक्खे थ नागो ॥ ११ ॥

अकेले विचरना अच्छा है, मूर्ख की मित्रता अच्छी नहीं । अनासक्त मातङ्गराज हाथी की भाँति अकेला विचरे, पाप न करे ।

( ३३१ )

अत्यग्निं चातग्निं सुखा सहाया

सुदुःखं सुखा या इतरीतरेण ।

पुण्यं सुखं जीवितसङ्गमग्निं

सत्त्वस्स दुष्कस्स सुखं पहाय्यं ॥१२॥

काम पकने पर मित्र सुखकर है, जिस तिस चीज़ से सन्तुष्ट रहना सुखकर है, जीवन के क्षय होने के समय पुण्य सुखकर है, लेकिन सबसे बड़कर सुखकर है सारे दुःखों का नाश ।

( ३३२ )

सुखा मत्सेव्यता लोके अथो पेसेव्यता सुखा ।

सुखा सामख्यता लोके अथो ब्रह्मख्यता सुखा ॥१३॥

संसार में मातृ-सेवा सुखकर है और सुखकर है पितृ-सेवा । संसार में भ्रमणत्व ( संन्यास ) सुखकर है और सुखकर है निष्ठाप होना ( ब्रह्मण्यत्व ) ।

( ३३३ )

सुखं याव जरा सीलं सुखा सद्धा पतिट्ठिता ।

सुखो पट्ठमाय पटित्तामो पापानं अकरय्यं सुखं ॥१४॥

श्रुवापे तक सदाचारी रहना सुखकर है, स्थिर-भद्रा सुखकर है, प्रज्ञा की प्राप्ति सुखकर है और सुखकर है पापों का न करना ।

## २४—तण्डावगो

( ३३४ )

मनुजस्स पमसचारिनो तण्हा षड्ढति मालुवा विव ।

सो फलवती दुरादुरं फलमिच्छं व वनस्मि वानरो ॥ १ ॥

प्रमादी मनुष्य की दृष्ट्या माधुवा ( लता ) की भाँति बढ़ती है ।  
फल की इच्छा करता हुआ वह वन में वानर की तरह दिनों दिन  
भटकता है ।

( ३३५ )

यं पसा सहती जम्मि तण्हा लोके विसत्तिका ।

सोका तस्स पवडन्ति अभिवड्ढं व वीरयं ॥ २ ॥

जैसे यह बराबर जनमते रहनेवाली विषरूपी दृष्ट्या पकड़ती है,  
वधनशील वीरय को भाँति उसके शोक बढ़ते हैं ।

( ३३६ )

ओ चेत्तं सहती जम्मि तण्हा लोके दुरवयं ।

सोका तम्हा पपत्तन्ति सव्विन्दूव पोक्खरा ॥ ३ ॥

लेकिन जो इस बराबर जनमते रहनेवाली दुर्जय दृष्ट्या को जीतता  
है, उसके शोक जैसे ही गिर जाते हैं, जैसे कमल ( पत्र ) से जल-विन्दु ।

( ३३७ )

तं ओ वरामि भदं ओ यावन्तेस्य समागता ।

तण्हाय मूलं खण्डय चसीरत्थोव वीरयं ॥ ४ ॥

इसलिए जितने नहीं आए हो, तुम्हें कहता हूँ—तुम्हारा मंगल हो। जिस प्रकार खस का चाहनेवाला वीरण भास को उखाड़ता है, उसी प्रकार तू तूष्णी की जड़ खोद दो।

( ३३८ )

यथापि भूले अनुपश्ये दच्छे

क्षिप्तोपि कच्छो पुनरेव रहति ।

यवन्मि तण्हानुसये अनूहते

निव्यसति दुस्समिदं पुनप्पुनं ॥ ५ ॥

जिस प्रकार—जब तक जड़ पूरी तरह नहीं उखड़ जाती तब तक कटा हुआ भी वृक्ष उग जाता है, उसी प्रकार जब तक तूष्णीरूपी अनुशय पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाते, तब तक बार बार दुःख पैदा होता रहता है।

( ३३९ )

यस्स क्षत्तिंसती सोता मनापस्सवना सुखा ।

बाहा वहन्ति दुदिट्ठिं सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥ ६ ॥

जिस आदमी के क्षत्तींस स्रोत, मन को अच्छी लगनेवाली चीजों की ही ओर जाते हों, उस मूर्खी धारवा नासे आदमी को उसके रागाग्नि त संकल्प मशकर ले जाते हैं।

( ३४० )

सवन्ति सव्ववि सोता लता उभिक्ख तिठ्ठति ।

तज्ज विस्वा सतं जातं मूलं पक्कवाय क्षिप्पथ ॥ ७ ॥

स्रोत चारों ओर बढ़ते हैं। लता अंकुरित रहती है। उस (तूष्णीरूपी) लता को उत्पन्न हुआ देख प्रका से उसकी जड़ को काटो।

( ३४१ )

सरितानि सिनेहितानि च

सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो ।

ते सोतसिता सुखेसिनो

ते वै जातिस्वरूपगा नरा ॥ ५ ॥

नदियाँ स्निग्ध हैं और प्राणियों के चित्त को अच्छी लगती हैं ।  
इन ( नदियों ) के बन्धन में बँधे नर भोगों को खोजते हैं, और जाति  
तथा नरा के फेर में पड़ते हैं ।

( ३४२ )

तस्मिन्नाय पुरस्कृताः पजा

परिसप्पन्ति ससो'व बाधितो ।

संयोजनसङ्गसत्तका

दुःखमुपेप्सि पुनप्युन चिराय ॥ ६ ॥

तृष्णा के पीछे लगे प्राणी, बँधे खरगोश की भाँति चकर काटते  
हैं, संयोजनों में कैसे नर बिरकाल तक बार बार दुःख पाते हैं ।

( ३४३ )

तस्मिन्नाय पुरस्कृताः पजा

परिसप्पन्ति ससो'व बाधितो ।

तस्मा तस्मिन् विनोदये भिक्खु

आकङ्क्षी विरागमत्तनो ॥ १० ॥

तृष्णा के पीछे लगे प्राणी, बँधे खरगोश की भाँति चकर काटते  
हैं; इसलिए अनासक्त होने की इच्छा रखनेवाला भिक्षु तृष्णा को दूर  
करे ।



( ३४४ )

यो निब्बनयो वनाभिमुत्तो वनमुत्तो ज्ञानमेव धावति ।

तं पुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो वन्धनमेव धावति ॥११॥

जो निर्वाचार्थी वृक्षा से मुक्त हो, अच्छी प्रकार मुक्त हो फिर वृक्षा की ही ओर दौड़ता है, उस आदमी को ऐसा जानो जैसे कोई बन्धन से मुक्त हो फिर बन्धन की ही ओर भागता है ।

( ३४५ )

न तं दृष्ट्वां वन्धनमाहु धीरा

यदाथसं दाकजं वन्धजज्ज ।

सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु

पुत्तेसु धारेसु च या अपेक्षा ॥१२॥

यह जो सोचे, लकड़ी या रस्ती के बन्धन हैं, उन्हें धीर (जन) बन्धन नहीं कहते । असली बन्धन तो हैं—धन में अनुरक्ति, पुत्र तथा स्त्री में अनुरक्ति ।

( ३४६ )

पतं दृष्ट्वां वन्धनमाहु धीरा

ओहारितं सिधिलं दुप्पमुत्तुवं ।

पतन्मि छेत्त्वान् परिब्बजन्ति

अनपेक्खित्तो काममुत्तं पहाव ॥१३॥

इन्हीं बन्धनों को धीर ( = जन ) पतनोन्मुक्त, सिधिल और दुस्त्यान्व बन्धन कहते हैं । वे इन्हें भी छेड़, अपेक्षारहित हो काम-मुक्त को प्रमजित होते हैं ।

( ३४७ )

ये रागरसानुपतन्ति सोतं  
 सद्यं कर्तं मक्कटकोषं जालं  
 पतन्ति छेत्स्वान वजन्ति धीरा  
 जनपेक्खिनो सम्मनुक्खं पहाय ॥१४॥

जो राग में रक्त है, वह मक्कड़ी के अपने बनाये जाले की तरह  
 प्रवाह में फँस जाते हैं; धीर ( जन ) इसे भी छेद कर, अपेक्षा-रहित  
 हो, सब दुखों को छोड़ प्रव्रजित होते हैं ।

( ३४८ )

मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो मक्के मुञ्च भवस्स पारगू ।  
 सम्मस्थ विमुत्तमानसो न पुन जातिजरं अपेहिस्सि ॥१५॥  
 पूर्व, वर्तमान तथा भविष्य के सम्बन्ध को छोड़ कर संसार-सागर  
 के पार हो जा । सब शरीर से मन को मुक्त कर लेने वाला नाति-जरा को  
 प्राप्त न होगा ।

( ३४९ )

वितक्कपमथितस्स जन्तुनो  
 तिब्बरागस्स सुमानुपस्सिनो ।  
 भिण्णो तयहा पवद्धति  
 एसो ओ वल्लहं करोसि बन्धनं ॥१६॥

जिसके मन में बहुत संकल्प-विकल्प उठते हैं, जिसके मन में तीव्र  
 राग है, जो शुभ ही शुभ देखता है, उसकी तुष्णा बढ़ती है, वह अपने  
 बन्धन को और भी दृढ़ करता है ।

( ३५० )

वितक्कूपसमे च यो रतो

असुमं भाषयति सदा सती ।

एस सो व्यन्तिकाहिनि

एस छेत्तसि मारदम्भनं ॥१७॥

जो संकल्प-विकल्प को शान्त करने में लगा है, जो जागृक रहकर सदा असुम को देखता है, वह मार के दम्भन को काटेगा, वही नष्ट करेगा ।

( ३५१ )

निट्ठुत्ततो असन्ताप्ती पीततण्हो अनङ्गणो ।

चच्छिन्नं भवसन्तानं अन्तिमो'यं समुत्तयो ॥१८॥

जिसका ( काम्य ) समाप्त हो गया, जो आस रहित है, जो तृष्णा-रहित है, जो मल-रहित है, वही संसार रूपी शल्य को काटेगा, यह उसका अन्तिम-जन्म है ।

( ३५२ )

पीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविधो ।

अक्खरानं सन्निपातं जज्झा पुच्चपरानि च ।

स वे अन्तिमसारारीतो महापब्बो'ति युष्मि ॥१९॥

जो तृष्णा-रहित है, जो परिग्रह-रहित है, जो भाषा और काव्य को जानता है, जो व्याकरण जानता है, वह निश्चय से अन्तिम शरीरवाला तथा महाप्राज्ञ है ।

( ३५३ )

सब्बाग्निभू सम्बधिदूहमस्मि

सब्बेसु धम्मोसु अनूपत्तिवो ।

सम्बन्धो तण्ड्यावगो विमुक्तो

सयं अभिव्यक्त्य कमुदिसेष्य ॥२०॥

मैंने सबको परास्त किया है, मैं सब कुछ जानता हूँ, मैं सब धर्मों (—अस्तित्वों) से अलिप्त हूँ, मैं सर्वस्व त्यागी हूँ, मैंने तुम्हारा काट कर दिया है, मैं विमुक्त हूँ—स्वयं ज्ञान प्राप्त करके मैं किसे (अपना) भुव बताऊँ !

( ३५४ )

सम्बन्धो धम्मदानं जिनाति

सर्वं रत्नं धम्मरत्नो जिनाति ।

सर्वं रत्तिं धम्मरत्नी जिनाति

तण्ड्यावगो, सम्बन्धुत्तं जिनाति ॥२१॥

धर्म का दान सब दानों से बढ़कर है, धर्म-रत्न सब रत्नों से बढ़कर है, धर्म-रत्ति सब रत्तियों से बढ़कर है, तुम्हारा काट सब दुःख-क्षयों से बढ़कर है ।

( ३५५ )

हन्ति भोगा दुस्सेधं नो चे पारगमेसिनो ।

भोगतण्ड्याय दुस्सेधो हन्ति अस्मिन्धेव अत्तमं ॥२२॥

भोग दुर्बुद्धि (—पुरुष) को नष्ट कर डालते हैं यदि वह पार जाने की कोशिश नहीं करता, भोग की तुम्हारा मैं पड़कर दुर्बुद्धि पराये की ओंति अपने को मार डालता है ।

( ३५६ )

तिग्गदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पज्जा ।

तस्मा हि वीतरागेसु दिमं होति महप्फलं ॥२३॥

सेतो का दोष है तृण, मनुष्यों का दोष है राग । इसलिए बीतराग  
मनुष्यों को दिया गया दान महान् फल देता है ।

( ३५७ )

तिण्णदोसानि सेत्तानि मोहदोसा अयं पज्जा ।

तस्मा हि बीतदोसेसु दिमं होति महप्फलं ॥२४॥

सेतो का दोष है तृण, मनुष्यों का दोष है मोह । इसलिए मोहरहित  
मनुष्यों को दिया गया दान महान् फल देता है ।

( ३५८ )

तिण्णदोसानि सेत्तानि मोहदोसा अयं पज्जा ।

तस्मा हि बीतमोहेसु दिमं होति महप्फलं ॥२५॥

सेतो का दोष है तृण, मनुष्यों का दोष है मोह । इसलिए मूढता-  
रहित मनुष्यों को दिया दान महान् फल देता है ।

( ३५९ )

तिण्णदोसानि सेत्तानि इच्छादोसा अयं पज्जा ।

तस्मा हि विगतिच्छेसु दिमं होति महप्फलं ॥२६॥

सेतो का दोष है तृण, मनुष्यों का दोष है इच्छा करना, इसलिए  
इच्छा-रहित मनुष्यों को दिया गया दान महान् फल देता है ।

## २५—भिक्षुवृग्गो

( ३६० )

धक्खुता संवरो साधु साधु सोतेन संवरो ।

घाणेन संवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो ॥ १ ॥

आँख का संयम ( करना ) अच्छा है, कान का संयम अच्छा है,  
नाक का संयम अच्छा है, जिह्वा का संयम अच्छा है ।

( ३६१ )

कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो ।

मनसा, संवरो साधु साधु सच्चत्थ संवरो ।

सच्चत्थ संयुतो भिक्षु सच्चत्थुता पमुच्चति ॥ २ ॥

शरीर का संयत रहना अच्छा है, वाणी का संयत रहना अच्छा है,  
मन का संयत रहना अच्छा है, सब इन्द्रियों को संयत रखनेवाला भिक्षु  
सब दुःखों से मुक्त होता है ।

( ३६२ )

इत्थसच्चत्थो पादसच्चत्थो

वाचाय सच्चत्थो सच्चत्थुत्तमो

अच्चत्तमो समाहितो

एको सन्तुसितो तमाहु भिक्षुं ॥ ३ ॥

जो हाथ, पाँव और वाणी से संयत है, जो उत्तम संयमी है, जो अपने में रत है, जो समाधियुक्त है, जो अकेला रहता है, जो समुद्र है, उसे भिक्षु कहते हैं ।

( ३६३ )

यो मुखसंयतो भिक्षु मन्तभाणी अनुदत्तो ।

अर्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्म भासितं ॥ ४ ॥

जो वाणी का संयमी है, जो मनन करके बोलता है, जो उद्धत नहीं है, जो अर्थ और धर्म को प्रकट करता है, उसका भाषण मधुर होता है ।

( ३६४ )

धम्मारातो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं ।

धम्मं अनुसरं भिक्षु सद्धम्मा न परिहायति ॥ ५ ॥

धर्म में रमण करनेवाला, धर्म में रत, धर्म का चिन्तन करनेवाला धर्म का अनुसरण करनेवाला भिक्षु सब धर्म से श्रुत नहीं होता ।

( ३६५ )

सत्तामं नातिमङ्ग्य्य, नाङ्ग्येसं पिहयं परे ।

अङ्ग्येसं पिहयं भिक्षु समाधिं नाधिगच्छति ॥ ६ ॥

अपने लाभ की अक्वहेलना न करें, और न दूसरे के लाभ की स्पृहा । दूसरे के लाभ की स्पृहा करनेवाला भिक्षु विच की एकामता को प्राप्त नहीं करता ।

( ३६६ )

अप्पलाभोपि ये भिक्षु सत्तामं नातिमङ्ग्यति ।

तं ये देवा पसंसन्ति सुखाधीनि अतन्वितं ॥ ७ ॥

चाहे लाभ थोड़ा ही हो, यदि भिक्षु अपने लाभ की अवहेलना नहीं करता, तो उस शुद्ध-आजीविका वाले आलस्य-रहित भिक्षु की देवता प्रशंसा करते हैं।

( ३६७ )

सन्धसो नामरूपस्मिं यस्त नत्थि ममायितं ।

असता च न सोचति स वे भिक्षु'ति वुचति ॥५॥

सारे जगत् ( = नाम-रूप ) में भिक्षुका कुछ भी "मेरा" नहीं है, जो ( किसी वस्तु के ) रहने पर शोक नहीं करता, यही भिक्षु कहलाता है।

( ३६८ )

मेत्तापिहारी यो भिक्षु पसम्मो बुद्धसासने ।

अधिगच्छे पवं सत्तं सङ्गारूपसमं सुखं ॥ ६ ॥

मैत्री ( -भावना ) से विहार करता हुआ, जो भिक्षु बुद्ध के उपदेश में अदायान है, वह सभी संस्कारों के शमन, सुखस्वरूप शान्त-पद को प्राप्त करता है।

( ३६९ )

सिद्ध भिक्षु । इमं नायं सिद्धा ते लहुमेस्सति ।

छेत्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निब्बाणमेहिसि ॥१०॥

भिक्षु, इस नायको उलीच । उलीचने से यह नाव तुम्हारे (लिफ्ट) हलकी हो जाएगी । राग और दोष को छेद कर तुम निर्वाण प्राप्त करोगे ।

( ३७० )

पञ्च क्षिप्वे पञ्च जहे पञ्चुत्तरि भाषवे ।

पञ्च सङ्गातिगो भिक्षु ओघतिक्खणो'ति वुचति ॥११॥



जो पाँच को छोड़े, पाँच को छोड़े, पाँच की भावना करे और पाँच के संसर्ग को लाँच जाए, वह भिक्षु 'बाढ़ से उत्तीर्ण' कहा जाता है ।

( ३७१ )

अथ भिक्षु ! मा च पामदो

मा से कामगुणे भयस्सु चित्तं ।

मा लोहगुलं गिली पमत्तो

मा कम्पि दुक्खमिदम्पि जय्हमानो ॥१२॥

भिक्षु, ध्यान कर, प्रमाद मत कर । ( देख, ) तेरा चित्त भोगों के चकर में न पड़े । प्रसन्न होकर लोहे के गोले को न निगल । "वह दुःख है" जलते हुए विह्वलकर तुझे रोना न पड़े ।

( ३७२ )

नस्मि स्मानं अपवज्जस्स पब्बा नस्मि अभायतो ।

यन्दि स्मानञ्च पब्बा च स वे निब्बाण सन्तिके ॥१३॥

जिसको प्रशंसा नहीं, उसका चित्त एकाम्र नहीं होता, जिसका चित्त एकाम्र नहीं, वह प्रशंसा नहीं हो सकता । जिसमें ध्यान और प्रशंसा दोनों हैं, वही निर्वाण के पास है ।

( ३७३ )

सुब्बागारं पविट्ठस्स सन्तचित्तस्स भिक्षुना ।

अमानुषो रत्ती होति सम्माधम्मं विवस्सतो ॥१४॥

एकान्त-गह में रहनेवाले, सान्त-चित्त, सम्यक् धर्म को जाननेवाले भिक्षु को लोकोत्तर आनन्द मिलता है ।

( ३७४ )

यतो यतो सम्मसति सन्धानं उद्यच्चयं ।

सुभती पीतिपामोज्जं अमरं तं विजानतं ॥१५॥

मनुष्य जैसे जैसे स्कंधों की उत्पत्ति और विनाश को देखता है, वैसे वैसे वह जानियों की प्रीति और प्रसन्नता रूपी अमृत को प्राप्त करता है ।

( ३७५ )

तत्रायमादि भवति इध पञ्चमस्स भिक्षुनो ।

इन्द्रियगुत्ति सम्पुट्टि पात्तिमोक्खे च संपरो ।

मिच्छे भजस्सु कल्याणे सुद्धाजीवे अतन्दिसे ॥१६॥

बुद्धिमान् भिक्षु को पहले यह करना होता है—इन्द्रिय-संयम, सम्मोष और भिक्षु-नियमों का पालन । ( उसे चाहिये कि ) वह शुद्ध आजी-विकावाले, आलस्य-रहित कल्याण-मित्रों की संगति करे ।

( ३७६ )

पदिसम्भारवुत्तस्स आचारकुसलो सिधा ।

ततो पामोक्खवहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्ससि ॥१७॥

सेवा-सत्कार करनेवाला होवे । आचारवान् बने । उससे आनन्दित होकर दुःख का अन्त करनेवाला बनेगा ।

( ३७७ )

वत्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति ।

एवं रागाद्व दोसद्व विप्पमुक्खेथ भिक्खवो ॥१८॥

जैसे जूही ( अपने ) कुम्हलाये-पूलों को गिरा देती है, उसी प्रकार भिक्षुओं, द्वय राग और द्वेष को छोड़ दो ।

( ३०८ )

सन्तकाथो सन्तवाचो सन्तवा सुसमाहितो ।

सन्तलोकामिसो भिक्खु पससन्तोहि वुच्यसि ॥१६॥

जिसका शरीर शान्त है, जिसकी वाणी शान्त है, जिसका ( मन ) शान्त है, जो समाधि-युक्त है, जिसने लौकिक मोक्षों को छोड़ दिया है, वह भिक्खु उपशान्त कहलाता है ।

( ३०९ )

अत्ताना चोवयत्तानं पटिमासे अत्तमत्ताना ।

सो अत्तगुत्तो सत्तिमा सुखं भिक्खु सिद्धाहिस्सि ॥२०॥

जो स्वयं अपने आपको प्रेरित करेगा, जो स्वयं अपनी परीक्षा करेगा, वह आत्म-संयमी, स्मृतिमान् भिक्खु सुखपूर्वक रहेगा ।

( ३१० )

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति ।

तस्मा सव्यथमयत्तानं अस्सं भद्रं, व चाणिजो ॥२१॥

(आदमी) अपना स्वामी आप है, अपनी गति आप है, इसलिए अपने आपको उसी तरह संयत रखें, जैसे व्यापारी अच्छे घोंड़े को ।

( ३११ )

पामोञ्जबहुलौ भिक्खु पससो वुद्धसासने ।

अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्गारूपसमं सुखं ॥२२॥

जो भिक्खु खूब प्रसन्न-चित्त है, जो बुद्ध के उपदेश में भ्रष्टावान् है, वह सभी संस्कारों के शमन, सुखस्वरूप शान्त-पद को प्राप्त करता है ।

( ३८२ )

यो ह्वे दहरो मिक्खु युज्जते बुद्धासासने ।

सो इमं लोकं पभासेति अदमा मुत्तोव चन्दिमा ॥२३॥

जो भिक्षु तद्व्यास में बुद्ध-शासन में संलग्न होता है, वह मेष से मुक्त चन्द्रमा की भांति लोक को प्रकाशित करता है ।

## २६—ब्राह्मणवग्गो

( ३८३ )

क्षिप्व सोता परक्कम कामे पनुद ब्राह्मण ।

संस्कारानं खयं भत्वा अकलञ्चस्सि ब्राह्मण ॥ १ ॥

हे ब्राह्मण, ( तुच्छा ) स्रोत को क्षिप्त कर दे, पराक्रम कर, काम-  
नाशों को भगा । हे ब्राह्मण । संस्कारों के क्षय को जानकर तू अकल  
(=निर्वाण ) का ज्ञानकार हो जा ।

( ३८४ )

यदा द्वयेसु वग्गेषु पारगू होति ब्राह्मणो ।

अथत्थ सन्ने संयोगा अत्थं गच्छन्ति आनतो ॥ २ ॥

जब ब्राह्मण चित्त-संयम और भावना, इन दो बातों में पारंगत हो  
जाता है, तब उस ज्ञानी के सभी बन्धन कट जाते हैं ।

( ३८५ )

यत्थ पारं अपारं वा पारापारं विक्कति ।

वीतहरं विसङ्खुशं समहं जूमि ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥

जिसका पार, अपार और पारापार नहीं है, जो निर्धन और  
अनासक्त है, उसे ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ३८६ )

आयिं विरजमासीनं कतकिञ्चं अनासवं ।

सत्तमत्थं अनुपपत्तं समहं जूमि ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥

जो ध्यानी है, जो निर्मल है, जो एकान्त-सेवी है, कृतकृत्य है, जो आसन्न-रहित है, जिसने उत्तम-अर्थ को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ३८७ )

दिया तपसि आदित्यो रसि आभाति चन्द्रिमा ।

सप्तद्वी क्षप्तियो तपसि आथी तपसि ब्राह्मणो ।

अथ सप्तमद्वीपस्य बुद्धो तपसि तेजसा ॥ ५ ॥

दिन में सूर्य अमकता है, रात को चन्द्रमा अमकता है, कबचबद्ध ( होने पर ) क्षत्रिय अमकता है, ध्यानी ( होने पर ) ब्राह्मण अमकता है, लेकिन बुद्ध अपने तेज से सदैव दिन-रात अमकते हैं ।

( ३८८ )

वाहितपापमेति ब्राह्मणो सप्त चरिया समयोति बुधति ।

पद्मजयमत्तनो मलं तस्मा पद्मजितोति बुधति ॥ ६ ॥

जिसने पापों को बहा दिया है, वह ब्राह्मण है, जिसकी चरियाँ ठीक ( —सप्त ) हैं, वह अमय है; जिसने अपने ( चित्त- ) मलों को हटा दिया वह प्रमजित कहलाता है ।

( ३८९ )

न ब्राह्मणस्स पदरेथ्य नादस मुखेथ ब्राह्मणो ।

वि ब्राह्मणस्स हृत्तारं ततो वि यस्स मुञ्जति ॥ ७ ॥

ब्राह्मण पर प्रहार न करे; ( ब्राह्मण को चाहिये कि ) प्रहारकर्ता पर कोप न करे । ब्राह्मण पर प्रहार करनेवाले को विह्वल है, लेकिन उससे अधिक विह्वल है उस ब्राह्मण को जो प्रहार-कर्ता पर कोप करे ।

( ३६० )

■ ब्राह्मणस्सेतवकिञ्चि सेय्यो

यदा निसेघो मनसो पियेहि ।

यतो यतो हिंसमनो निवत्तति

ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खं ॥ ८ ॥

ब्राह्मण के लिए यह बात कम कल्याणकारी नहीं, जो वह प्रिय (वस्तुओं) से मन को हटा लेता है; जहाँ जहाँ मन हिंसा से विमुक्त होता है, वहाँ दुःख शान्त होता ही है ।

( ३६१ )

यस्स कायेन वाचाय मनसा नरिय दुक्खं ।

संचुतं तीहि ठानेहि तमहं भूमि ब्राह्मणं ॥ ९ ॥

जिसके शरीर, वाणी तथा मन से कोई पाप नहीं होता, जो इन तीनों स्थानों में संयत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ३६२ )

यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्मुदवेसितं ।

सक्ककर्त्तुं स' नमस्येय्य अग्निहुत्तां च ब्राह्मणो ॥१०॥

जिस उपदेशक से बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म जाने, उसे वैसे ही नमस्कार करे, जैसे ब्राह्मण अग्नि-होम को ।

( ३६३ )

न जटाहि न गोत्तेहि न जप्पा होति ब्राह्मणो ।

यन्हि सक्क धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥११॥

न जटा से, न गोत्र ने, न जन्म से ब्राह्मण होता है; जिसमें साथ और धर्म है, वही व्यक्ति पवित्र है और वही ब्राह्मण है ।

( ३६४ )

किं ते जटाहि दुम्मेव ! किं ते अजिनसाटिया ।

अन्नमन्तरं ते गहरां बाहिरं परिमज्जसि ॥ १२ ॥

हे दुर्यधि ! जटाओं से तुम्हें क्या ( लाभ ! ) और मृग-चर्म के पहनने से क्या ! अन्दर से तो तू मैला है, बाहर से धोता है ।

( ३६५ )

पंसुकूलधरं जन्तुं कित्तं धमनिसन्धत्तं ।

एकं वनस्मिं स्थायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १३ ॥

जो कटे-पुराने वस्त्रों को धारण करता है, जो पतला दुबला है, जिसकी नसें दिखाई देती हैं, जो वन में अकेला ध्यान करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ३६६ )

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवं ।

‘मो वादी’ नाम सो होति स चे होति सकिञ्चनो ।

अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १४ ॥

मैं ब्राह्मणों-माता से पैदा होने के कारण किसी को ब्राह्मण नहीं कहता । यदि वह सम्पन्न होता है तो उसे ‘मो’ से सम्बोधन किया जाता है । जिसके पास कुछ नहीं है, और जो कुछ नहीं लेता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ३६७ )

सव्वसव्वयोजनं छेत्वा यो वे न परितस्ससि ।

सङ्गातिगं विसव्वमुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १५ ॥

जो सब बन्धनों को काटता है, जो निर्मय है, जो संग और आसक्ति से रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।



( ३६८ )

छेत्वा नखिं वरतश्च सम्दामं सहजुक्कमं ।

चम्पितपतिधं बुद्धं तमहं मूढं ब्राह्मणं ॥१६॥

नखि, रस्ती, पगड़े, और मुँह पर बाँधने के जाले को काट, बुद्ध को फेंक जो बुद्ध हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ३६९ )

अककोसं वधवन्धश्च अदुहो यो तितिक्रवति ।

स्त्रिभक्तं बलानीकं तमहं मूढं ब्राह्मणं ॥१७॥

गाली, बध और बन्धन को जो पिना चित्त को वृषित किए सहन करता है, त्रिभा-बल ही जिसकी सेना का सेना-पति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४०० )

अककोधनं वतवन्तं सीलवन्तं अनुस्सव ।

वृन्तं अन्तिमसारीरं तमहं मूढं ब्राह्मणं ॥१८॥

जो अकधी है, जो वती है, जो सदाचारी है, जो तुष्ण्या-रहित है, जो संकामी है, जो अन्तिम शरीरधारी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४०१ )

वारि पोक्खरपरोष आरगौरिव सासपो

यो न लिम्पति कामेसु तमहं मूढं ब्राह्मणं ॥१९॥

कमल के पसे पर पानी की बूँदें और आरे की नोक पर सस्ती के दाने की भीति जो काम-भोगों में अस्मित रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४०२ )

धो दुक्खस्स पजानाति इधेव खयमत्तनो ।

पन्नमारं विसक्कुत्तं तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥२०॥

जो इसी जन्म में अपने दुःख के लय को जानता है, जिसने अपना भार उतार दिया है, जो आवर्ति-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४०३ )

गम्भीरपठ्यं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं ।

उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥२१॥

जो गम्भीर प्रणवाला है, जो मेधावी है, जो मार्ग-अमार्ग को पहचानता है, जिसने उत्तम-अर्थ को प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४०४ )

असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागरेहि चूभयं ।

अनोकसारिं अप्पिच्छं तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥२२॥

जो गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों से अलिस रहता है, जो इच्छा-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४०५ )

निधाव द्दण्डं मूतेसु तसेसु पापरेसु च ।

यो न हन्ति न घातेति तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥२३॥

जो चर-अचर सभी प्राणियों की हिंसा से विरत हो, न किसी को मारता है, न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४०६ )

अविस्सं विद्वसेसु अत्तदण्डेसु निन्नुहं ।

सादानेसु अनादानं तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥२४॥

जो विरोधियों में अविरोधी, जो दण्ड - वारियों में दण्ड-त्यागी, जो संग्रह करनेवालों में असंग्रही है; उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४०७ )

यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो ।

सासपोरिव अपरग्गा तमहं ऋमि ब्राह्मणं ॥२५॥

जिस ( के चित्त ) से राग, द्वेष मान और बाह ऐसे ही गिर पड़े हैं जैसे आरे के छपर से सरसों के दाने, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४०८ )

अककसं विष्वापनिं गिरं सत्थं वदीरये ।

वाय नाभिसजे कञ्चि तमहं ऋमि ब्राह्मणं ॥२६॥

जो अककस, विषय को स्पष्ट करनेवाली तथा लची नाखी धोलाता है, जिससे किसी को पीड़ा नहीं पहुँचती, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४०९ )

घोष दीवं वा रस्सं वा अणुं थूलं सुभासुमं ।

लोके अदिक्खं नावियति तमहं ऋमि ब्राह्मणं ॥२७॥

चाहे लम्बी हो चाहे छोटी, चाहे मोटी हो चाहे पतली, चाहे अणु हो चाहे बुरी, जो संसार में किसी भी चीज़ की चोरी नहीं करता उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४१० )

आसा यस्स न विज्झन्ति अस्मिं लोके परन्धि च ।

निरासयं विसंयुतं तमहं ऋमि ब्राह्मणं ॥२८॥

इस लोक और परलोक की ( किसी चीज़ में ) जिसकी इच्छा नहीं है, जो इच्छा-रहित है, जो आसक्ति-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४११ )

यस्मात्तथा ■ विज्ञप्ति अकथ्यकथी ।

अमलोगर्भ अनुपपन्नं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२६॥

जो आसक्ति-रहित है, जो जानकार होने से संशय-रहित है, जिसने गाढ़े अमृत को पा लिया है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४१२ )

योध पुण्यञ्च पापञ्च समो सङ्गं उपबन्धा ।

असोकं विरजं सुखं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२७॥

जो इस संसार में पुण्य और पाप दोनों से परे है, जो शोक-रहित है, जो निर्मल है, जो शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४१३ )

चन्द्रं च विमलं सुखं विमलसन्नमनाविलं ।

नन्दीभवपरिवस्त्रीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२८॥

जो चन्द्रमा की भाँति विमल, शुद्ध और स्वच्छ है, जिसके व्यवस्था नष्ट हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४१४ )

यो इमं पतिपथं दुर्गमं संसारं मोहमथगा ।

तिष्ठणो पारगतो क्वायी कनेजो अकथंकथी ।

अनुपादाय निन्नुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२९॥

जिसने इस-दुर्गम संसार ( जन्म-मरण ) के चक्र में डालनेवाले मोह-स्वरूप उलटे मार्ग को त्याग दिया, जो तीर्थ हो गया, जो पार कर गया, जो ध्यानी है, जो स्थिर है, जो संशय-रहित है, जिसने उपादान-रहित निर्वाण को प्राप्त कर लिया, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४१५ )

योष कामे पइत्थान अनागारो परिब्बजे ।

कामभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३३॥

जो काम भोगों को छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हो गया है, जिसका काम-  
भव नष्ट हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४१६ )

योष तसहं पइत्थान अनागारो परिब्बजे ।

तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३४॥

जो तृष्णा को छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हो गया है, जिसका तृष्णा-भव  
नष्ट हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४१७ )

हित्वा मानुसकं योगं दिव्यं योगं उपपन्नगा ।

सव्वयोगविसंयुक्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३५॥

जिसने मानुषी-भोगों को छोड़ दिया, दिव्य-भोगों को भी छोड़  
दिया, जो सभी भोगों के प्रति अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४१८ )

हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीलीभूतं निरूपधिं ।

सव्वलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३६॥

जिसने रति और अरति को छोड़ दिया, जो शान्त हो गया, जो  
क्लेश-रहित है, जिस वीर ने सारे लोक को जीत लिया, उसे मैं ब्राह्मण  
कहता हूँ ।

( ४१९ )

सुप्तिं यो वेदिं सत्तानं उपपत्तिञ्च सव्वसो ।

असत्तं सुगतं सुखं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३७॥

जो प्राणियों की मृत्यु तथा उत्पत्ति को भले प्रकार जानता है, जो आसक्ति-रहित सुगति-प्राप्त हुए है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४२० )

यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धर्वमासुरा ।

स्त्रीणासवं अरहन्सं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३८॥

जिसकी गति को न देवता जानते हैं, न गन्धर्व और न मनुष्य, जो स्त्री-ब्रह्मण्ड है, जो अर्हत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४२१ )

यस्स पुरे च पच्छा च मक्खे च नरिं किञ्चनं ।

अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९॥

जिसकी अतीत, वर्तमान या भविष्य में कहीं कुछ आसक्ति नहीं है, जो परिग्रह-रहित, आदान-रहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४२२ )

ससमं पवरं वीरं महसिं विजिताविनं ।

अनेजं नहासकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥

जो श्रेष्ठ है, जो प्रवर है, जो वीर है, जो महर्षि है, जो विजेता है, जो स्थिर है, जो स्नातक है, जो बुद्ध है—उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

( ४२३ )

पुब्बेनिवासं यो वेदिं सग्गापायञ्च पस्सति ।

अयो जातिवस्सवं पत्तो अभिक्खवोसितो मुनि ।

सन्धवोसितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥

जो जन्म को जानता है, जो स्वर्ग और नरक को देखता है, जिसका ( पुनः ) जन्म क्षीण हो गया, जो अभिजात है, जिसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

## गाथा-सूची

अकनकसं	२६।२६	अनवद्वितचित्तस्स	१।६
अकतं दुनकतं	२२।६	अनवस्सुतचित्तस्स	३।७
अनकोच्छि मं	१।३,४	अनिकसावो कासावं	१।६
अक्कोधनं वतवन्तं	२६।१८	अनुपुब्बेन मेवावी	१८।५
अक्कोघेन विने	१७।३	अनूपवादो अनूपवातो	१४।७
अचरित्वा जहं-	११।१०, १२	अनेकजातिसंतारं	११।८
अक्कोसं वधवन्धं	२६।१७	अन्धभूतो अयं	१३।८
अचिरं वतयं	३।६	अपि दिन्वे	१४।६
अत्था हि लाभू-	५।१६	अपुम्मलामो ज	२२।५
अट्टीनं नमरं	११।५	अप्यका ते	६।१०
अचदत्तं	११।१०	अप्यमत्तो अयं	४।१३
अत्तना चोद-	२५।२०	अप्यमत्तो पमत्तेसु	२।६
अत्तनाव कतं	१२।५	अप्यमादरता होय	२३।८
अत्तनाव कतं पापं	१२।६	अप्यमादरतो भिक्खु	२।११, १२
अत्तानब्बे तथा	१२।३	अप्यमादेन मघवा	२।१०
अत्तानब्बे पियं	१२।१	अप्यमादो अमत्तपंद	२।१
अत्तानमेव पठमं	१२।२	अप्यमिं पे छंहितं	१।२०
अत्ता इये वितं	८।५	अप्यलामोदि चे	२५।७
अत्ता हि अत्तनो नायो	२५।२१	अप्यस्सुता	११।७
अत्ता हि अत्तनो	१२।४	अभये च भय-	२२।२२
अत्थमिं जालमिह	२३।१२	अभित्यरेथ	६।१
अय पापानि	१०।८	अभिवादनील्लिस्स	८।१०
अभयस्स अगाराणि	१०।१२	अभूतवादी निरयं	२२।१

अवसाध मलं	१८।६	उद्धानवतो सतिमतो	२।४
अयोधो युष्म-	१६।१	उद्धानेन	२।५
अलङ्कृतो चेपि	१०।१४	उत्तिष्ठे	१३।२
अलजिता ये	२२।११	उदकं हि	६।५:१०।१७
अवजो यज	२२।१३	उपनीतवयी	१८।३
अविक्रयं विक्रयैस्तु	१६।२४	उप्युज्जान्ति	७।२
असद्व्यभिचयमला	१८।७	उसर्भं पवरं	२६।४०
असत्तं भावन-	५।१४	एकं धम्मां	१३।१०
असंसृष्टं	२६।२२	एकस्स चरितं	२१।२१
असारे सारमतिनो	१।११	एकासनं एकसेय्यं	२१।२६
असाहसेन धम्मेन	१६।२	एतं त्वो वरणं	१४।१४
असुभानुपस्तिं	१।८	एतं दण्डं	२४।२३
अस्सद्धो अकलम्भू	७।८	एतमत्यवसं	२०।१७
अस्तो यथा भद्रो	१०।१६	एतं विसेसतो	२।२
अहं नागो 'य	२३।१	एतं हि तुम्हे	२०।३
अहिंसका ये	१७।५	एथ पस्तथिमं	१३।५
अक्रासे च पदं	१८।२०, २१	एवम्भो पुरिस	१८।२४
आरोग्यं परमा	१५।८	एवं संकारभूते-	४।१६
आसा यस्स	२६।२८	एलो'य भगो	२०।२
इह पुरे	२३।७	ओववेम्य	६।२
इध तप्पति	११।७	अरहं धम्मां	६।१२
इध नन्दति	११।८	कथिरञ्जे	२२।८
इध मोक्षति	११।६	कम्मतो जायते	१६।७
■ यस्स	२०।१४	कावप्पकोपं	१७।११
इध सोचति	१।१५	कायेन संवरो	२५।२
उच्छिन्द सितेह-	२०।१३	कायेन संकुता	१७।१४
उद्धानकालमिह	२०।८	कासावकयठा-	२२।२



किञ्चो मनुस्स-	१४/४	आयिं विरल-	२६/४
किं ते जडाहि	२६/१२	सिद्धं कम्मं	५/६
कुम्भूरमं	३/८	तथाहाय जायते	१६/८
कुसो यथा	२२/६	ततो मला	१८/६
को इमं पठथिं	४/१	तन्नामिरति	६/१३
कोथं लोहे	१७/१	तन्नायमादि	२५/१६
खन्ती परमं तपो	१४/६	तथेष कत-	१६/१२
गतदिनो	७/१	तं पुत्त-यमु-	२०/१५
गम्भमेके	६/१३	तं वो यदाभि	२४/४
गम्भीरपठम-	२६/११	तसिणाय पुरस्सता	२४/१०, ६
गहकारक	११/६	तस्मा पिमं	१६/३
गमे वा यदि	७/६	तस्मा हि धीरं	२५/१२
चक्खुना	२५/१	तिणोदोसणि	२४/२३, २४, २५, २६
चत्तारि ठानानि	२२/४	वुम्हेहि किञ्चं	२०/४
चन्दनं तगरं	४/१२	ते आयिनी	२/३
चन्दं व विमल-	२६/११	ते ताविसे	१४/१८
चरज्जेनापि-	५/२	तेसं सम्यज्ज	४/१४
चरन्ति वासा	५/७	इदन्ति वे	१८/१५
चिरप्पवासिं	१६/११	दन्तं नवन्ति	२३/२
भुविं यो वेदि	२६/१७	दिवा तपति	२६/५
कुन्दजासो	१६/२०	दिसो विसं	३/१०
किन्द उभे	२६/१	दीप्ता जागरतो	५/१
झेखा नन्दि	२६/१६	कुक्खं	१४/१६
सयं वेरं	१५/५	कुभिग्गाहस्स	३/३
मिच्छन्नापरमा	१५/७	कुप्पम्भजं	२१/१३
जीरन्ति वे राज-	११/६	कुल्लभो	१४/२५
मोय भिक्खू	२५/१२	दुरंगमं	३/५

दूरे सन्ती	२१।१५	न बाह्यव्यस्त-	२६।७
वनपालको	२३।५	न बाह्यव्यस्ते-	२६।८
धम्मं चरे	१३।३	न भये	६।३
धम्मपीती	६।४	न मुखक्येन	१६।६
धम्माराभो	२५।५	न मोनेन	१६।१३
न अस्तवेत्	६।६	न वाककरव-	१६।७
न अन्तलिक्खे	६।१२, १३	न वे कदरिया	१३।११
न कदापय-	१४।८	न सन्ति पुत्ता	२०।१६
नगरं यथा	२२।१०	न सीलम्भत-	१६।१६
न पाहं	२६।१४	न हि एतेहि	२३।४
न पाहु	१७।८	न हि पापं	५।१२
न जटाहि	२६।११	न हि धेरेन	१।५
न तं कम्मं	५।८	निटुं गतो	२४।१८
न तं दहं	२४।१२	निधाय दहं	२६।१३
न तं माता	५।११	निधीनं'व	६।१
न छावता धम्म-	१६।४	नेकखं	१७।१०
न तेन अरियो	१६।१५	नेत' लो सरणं	१४।११
न तेन घेरो	१६।५	नेव वेधो	८।६
न तेन प्रक्षितो	१६।३	नो व लमेय	२३।१०
न तेन भिक्खु	१६।११	पञ्च छिन्दे	२५।११
न तेन होति	१६।१	पटिसन्धार-	२५।१७
नरिषि भग्नं	२५।१३	पठवीसमो	७।६
नरिषि राग-	१५।६	पण्डुपलासो	१८।१
नरिषि राग-	१८।१७	पथव्या एकरज्जेन	१६।१२
न नग्गो-	२०।१३	पमादमनु-	१।६
न परेसं	४।७	पमादमपमादेन	१।८
न पुष्पगान्धो	४।११	परयुक्खपदानेन	२१।२

परवच्चानुपस्सि-	१८।१६	मनोप्पकोपं	१७।१३
परिजिण्णामदं	११।३	मनो पुण्वज्जभा	१।२,२
परे च न	१।६	ममेव कत-	५।२५
पविचेकरसं	१५।६	मिलिस्थिया	१८।८
पंसुकूलधरं	२६।१३	मरतरं पितरं	२१।५, ६
पस्स चित्तकलं	११।२	मा पमाद-	३।७
पाणिग्घि वे	६।६	मा पियेहि	१६।२
पापञ्चं पुरिसो	६।२	मा' वमज्जयेय पापरस	६।६
पापानि परि-	१६।१४	मा' वमज्जयेय	६।७
पापो' पि पस्ससि	६।४	मा वोच फल्लं	१०।५
पामोज्जवहु-	२५।२१	मासे मासे कुस-	५।११
पियतो जायते	१६।४	मासे-मासे सहस्सेन	८।७
पुब्बञ्चे पुरिसो	६।३	मिद्धी दया	२३।६
पुत्ता म' स्थि	५।३	मृञ्च पुरे	२४।१५
पुब्बेनिवासं	२६।४१	मुहुत्तमपि	५।६
पूसारहे	१४।१७	मेत्ताविहारी	२५।६
पेमतो जायते	१६।५	य स्सञ्चन्त-	१२।६
पोरण्यमेतं	१७।७	यं एता सहती	२४।२
फंदनं चपलं .	३।१	यं किञ्चि यिट्ठं	८।६
फुलामि नेक्खम्म	१६।१७	यं किञ्चि सि-	२२।७
फेनूपमं	४।३	यञ्चे निब्बू	१७।६
वालसंगतचारी	१५।११	यतो यतो सम्म-	२५।१५
मद्धो 'पि	६।५	यथागारं दुच्छलं	१।१३
ममानट्ठंगिको	२०।१	यथागारं दुच्छलं	१।१४
मत्ताशुलपरिआगा	२१।१	यथा दथेन	१०।७
मधुवा मञ्जली	५।१०	यथापि पुप्फ-	४।१०
मनुजस्स पमस-	२४।१	यथापि भमरो	४।६

यथापि मूले	२४।५	ये च खो	६।११
यथापि रहसो	६।७	ये भानपसुता	१४।३
यथापि रुधिरं	४।८, ९	ये रागरक्षा	२४।१४
यथा मुन्मूलकं	१३।४	येसं च मुसभा-	२१।४
यथा सङ्कार-	४।१५	येसं सन्निकसो	७।३
यदा द्वयेषु	२६।२	येसं सम्मोषि	६।१४
यम्हा धम्मं	२६।१०	यो अप्पदुदुस्स	१।१०
यं हि किञ्च	२१।३	यो ह्यं पल्लिपयं	२६।३२
यम्हि सञ्चं च	११।६	योगा ये जायती	२०।१०
यस्त कायेन	२६।१२	यो च गाथा-	८।३
यस्त गतिं	२६।३८	यो च पुम्मे	१३।६
यस्त चेतं समु-	११।८	यो च ब्रह्म	१४।१२
यस्त चेतंसमु-	१८।१६	यो च वन्तकसाध-	१।१०
यस्त छत्तिंसती	२४।६	यो च वस्तमतं	८।८
यस्त जालिनी	१४।२	यो च समेति	११।१०
यस्त जितं	१४।१	यो चेतं सहती	२४।३
यस्त पारं	१३।७	यो दयसेन	१०।१२
यस्त पारं अपारं	२६।३	यो दुक्खरस	२६।२०
यस्त पुरे च	२६।३६	यो च कामे	२६।३३
यस्त रागो च	२६।२५	यो'ध तण्हं	२६।३४
यस्तालया न	२६।२६	यो'ध दीर्घं	२६।२७
सस्तासवा	७।४	यो'ध पुञ्जं	२६।३०
मस्तिन्द्रियाणि	७।५	यो'ध पुञ्जं	१६।१२
यानि' भानि	११।४	यो निम्बानयो	२४।११
याव जीवन्मि	५।५	यो पाणमतिपातेति	१८।१२
यावदेव अनत्थाय	५।१३	यो बालो	५।४
याव हि वनो	२०।१२	यो मुत्त-	२५।४

यो वे उष्पतिर्त	१७।१	सम्भकायो	२५।१६
यो सहस्त्र-	८।४	सन्तं तस्स	७।७
यो सासनं	१२।८	सम्भत्तं वे	६।८
यो हवे दहरो	२५।२३	सम्भदानं	२४।२१
रतिया जायते	१६।६	सम्भपापस्स	१४।५
रमणीयानि अरञ्जानि	७।१०	सम्भसंयोजनं	२६।१५
रागतो वा	१०।११	सम्भसो नाम-	२५।८
वची एकोपं	१७।१२	सम्भाभिम्	२४।२०
वज्जं वज्जतो	२२।१४	सम्भे तसस्ति	१०।१,२
वर्तं छिन्दय	२०।११	सम्भे वज्जा	२०।७
वर् अस्सतरा	२३।३	सम्भे सङ्कारा अ-	२०।५
वत्तिफा विव	२५।१८	सम्भे सङ्कारा दु-	२०।६
वहुम्पि चे	१।१६	वरितानि	२४।८
वहुं वे सरथं	१४।१०	सल्लभं	२५।६
वात्वानुरक्खी	२०।६	सवन्ति सम्भ-	२४।७
वाण्णिजो'व	६।८	सहस्सम्पि चे गाथा	८।२
वारिजोव	३।२	सहस्सम्पि चे वाचा	८।१
वाहितपापो	२६।६	साहु दस्सन-	२५।१०
वितक्कपमयितस्स	२४।१६	सारथ्य	१।१२
वितक्कूपसमे च	२४।१७	सिद्ध भिक्खू	२५।१०
वीततक्कहो अनारादानो	२४।१९	वीलदस्सन-	१६।६
वेदनं फक्खं	१०।१०	सुकरानि	१२।७
सचे नेरेसि	१०।६	सुलकामानि	१०।३,४
सचे लमेव	२३।६	सुलं याव	२३।१४
सम्भं भणो	१७।४	सुलामत्तेय्यता	२१।१३
सदा जागरमानानं	१७।६	सुलो बुद्धानं	१४।१६
सद्धो सीलेन	२१।१४	सुजीवं	१८।१०

सुब्जागारं	२५।१४	सो करोहि	१८।२,४
सुदत्तं वज्र-	१८।१८	हृत्पञ्चमतो	२५।१३
सुदुहं	३।४	हनन्ति भोगा	२४।२२
सुप्पबुद्धं	२१।७, १२	इसा' दिक्क-	१३।६
सुभानुपत्ति	१।७	दित्वा मानुसकं	२६।३५
सुराभेरवपानं	१८।१३	दित्वा रतिं	२६।३६
सुखं घट	१५।१-४	हिरीनिसेधो	१०।१५
सेखो पठिं	४।२	हिरीमता च	१८।११
सेम्यो भयो-	२२।३	हीनं घम्मं	१३।१
सेखो यथा	६।६		

## शब्द सूची

पृ० १. धर्म—शब्द के उपदेश में धर्म शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यहाँ धर्म शब्द से वेदना, संज्ञा तथा संस्कार इन तीन अरूप-स्कन्धों का ग्रहण है।

पृ० ३. सुभाभाषना—काम-भोगों को ही सब कुछ समझने की चेतना।

पृ० ३. असुभाभाषना—शरीर की गन्दगी का ध्यान, जिससे काम-भोगमय जीवन से अकचि हो। इस ध्यान के इस प्रकार हैं।

पृ० ३ मार—इन्द्र से ऊपर और ब्रह्मा से नीचे का देवता, जिसे वैदिक साहित्य में प्रजापति कहते हैं। (२) राग, द्वेष, मोह आदि मन की बुद्धिर्मा, जो सत्य के मार्ग में बाधक होती हैं, उन्हें ही रूपक करके मार नाम का एक देवता माना गया है।

पृ० ८. आर्य—स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत (= जीवन्मुक्त)।

पृ० १४. शैश—स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी पद प्राप्त व्यक्ति को, जो अभी अर्हत नहीं हुआ शैश कहते हैं, क्योंकि वह अभी शिष्यदीय है।

पृ० २५. सम्बोधि अङ्ग—स्मृति, धर्म-विचय, धीर्य (= उद्योग), प्रीति, प्रभञ्जि (= शान्ति), समाधि तथा उपेक्षा।

पृ० २७. आश्रय—(= मल) [१] कामाश्रय (= काम भोग-सम्बन्धी इच्छा), भवाश्रय (= भिन्न-भिन्न लोकों में जन्म लेने की इच्छा), दृष्ट्याश्रय (= गलत धारणा), तथा अविद्याश्रय।

पृ० ५० स्त्रीतापन्न—आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर आरुढ़ व्यक्ति जिसका अपने लक्ष्य तक पहुँचना निश्चित है ।

पृ० ५१. अपव—रगादि से मुक्त ।

पृ० ५५. तथागत—बुद्ध = तथा-गत वा तथा-आगत ।

पृ० ७६. आर्य-सत्य—दुःख, दुःख समुदय, दुःखनिरोध तथा दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा ।

पृ० ७६. चक्षुमान—पाँच प्रकार के ज्ञान (=चक्षु) से युक्त ।

पृ० ७६. अष्टांगिक मार्ग—[१] सम्यक् दृष्टि [२] सम्यक् संकल्प, [३] सम्यक् वाणी, [४] सम्यक् कर्मान्त, [५] सम्यक् आजीविका, [६] सम्यक् ज्ञायाम, [७] सम्यक् स्मृति, [८] सम्यक् समाधि ।

पृ० ७६. सुगत—सम्यक् गमन वा सम्यक् गति वाले = बुद्ध ।

पृ० ८२. कायानुस्मृति—शरीर और शारीरिक कर्मों के प्रति जागरूकता ।

पृ० ८२. आत्म-दृष्टि—शरीर और मन के परे 'आत्मा' नाम की किसी नित्य-सत्ता को मानना ।

पृ० ८२. उच्छेद-दृष्टि—मरख पर्यन्त और कर्म से पूर्व किसी प्रकार के अस्तित्व को न मानना ।

पृ० ८२. पाँच उपादान स्कन्ध—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान ।

पृ० ८२. पाँच आवरण—पाँच नीवरण [१] कामेच्छा, [२] व्यापाद, [३] स्थानभृश, [४] औदत्य-कीदृश्य, [५] निचिकित्सा ।

पृ० ८३. वीरण—अमर-बेल ।

पृ० ८४. छत्तीसश्लोक—चक्षु, श्रोत्र आदि १८ अन्दरूनी तथा रूप, शब्द आदि १८ बाहरी—कुल ३६ श्लोक ।



पृ० ६६. धर्म—काम-लोभ, लोभ-लोभ तथा अकाम-लोभ करके निभूमिक धर्म ।

पृ० १०३. पाँच को छोड़े—[१] तत्काल इष्टि, [२] विधिक्रिया = तन्त्र, [३] शीलव्रत-परामर्श, [४] काम-राग, [५] रूप-राग ।

पृ० १०३. पाँच को छोड़े—[३] अकाम-राग, [४] प्रविष्ट, [५] मान, [६] शौच, [७] अविद्या ।

पृ० १०३. पाँच की भावना करे—अज्ञा आदि पाँच इन्द्रियों ।

पृ० १०३. पाँच को लाँच लावे—[१] राग, [२] द्वेष, [३] मोह, [४] मान, [५] इष्टि ।

पृ० ११६. कामधर्म—[१] वस्तु काम (= वस्तुओं की कामना, [२] लोभ-काम (चित्त की अछद्मियों को लक्ष्य करने की कामना)

पृ० ११६. पुण्याधर्म—इन्द्रियों के मोहों की पुण्या ।







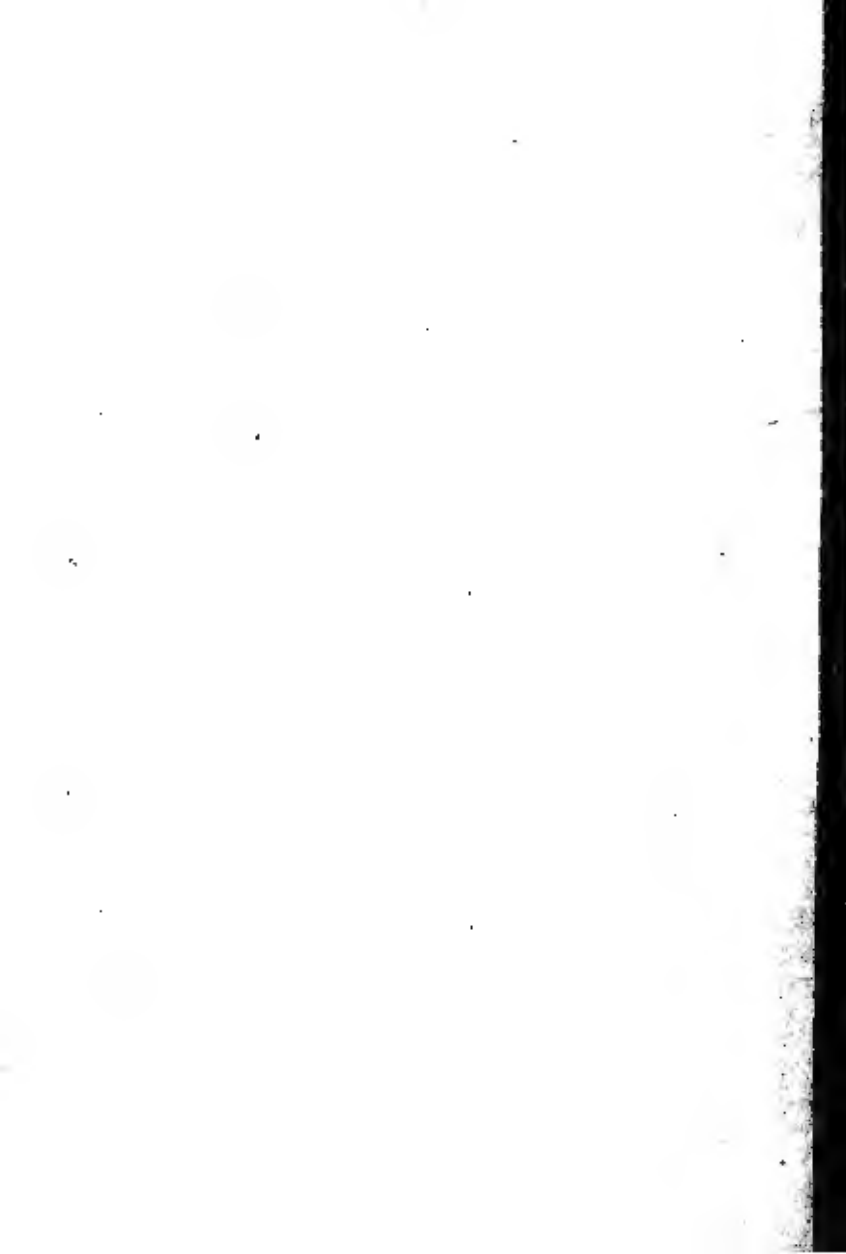


# हमारे अन्य आकर्षण

- जो न भूल सका संस्कारण—अनन्त प्रान्त की प्रशंसा... (१)
- चहुँतो धूप— उपन्यास—'अनन्त' ... (२)
- कान्ति दूत— " —धीकृष्णदास अम० १० (३)
- अग्नि-पथ— (दूसरा संस्कारण) ... (४)
- हृदय का कोना " " —अनन्त प्रसाद विद्यापी... (५)
- संधियों के बीच (तोषण) " —योगप्रसाद विद्यापी... (६)
- सहिमा " " ... (७)
- विराग (दूसरा संस्कारण) " " ... (८)
- चन्द्रमित्रा " —योगप्रसाद विद्यापी ... (९)
- अंगारे (दूसरा संस्कारण) कथा-संग्रह—अनन्त प्रसाद आकर्षण... (१०)
- चोराहे से कविता—अनन्त प्रसाद आकर्षण... (११)
- बेला " —निरालाजी ... (१२)
- प्रकाशक—

हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, राबर्ट्स, इलाहाबाद





Central Archaeological Library,  
NEW DELHI

Call No. BP a3/Dha-/Kau 19233

Author—*डॉ. हनुमान चन्द्रावत*

Title—*धम्मपद*

*"A book that is shut is but a block."*

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY  
GOVT. OF INDIA  
Department of Archaeology  
NEW DELHI.

Please help us to keep the book  
clean and moving.